कबीर साहित्य चिंतन

(Kabir Literary Concerns)

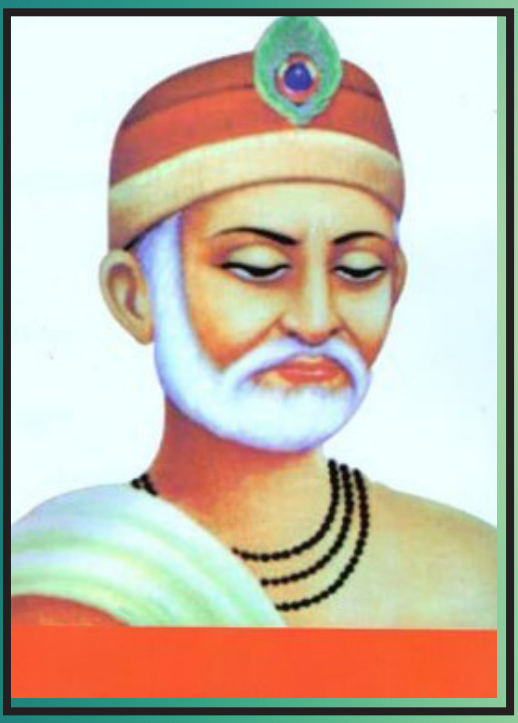

सीताराम यादव

कबीर साहित्य चिंतन

कबीर साहित्य चिंतन
(Kabir Literary Concerns)

सीताराम यादव

भाषा प्रकाशन
नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5465-9

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

कबीरदास कहते हैं कि हिंदू और मुसलमान दोनों ही अपने-अपने धर्मों के पाखंडों में लीन है, मर्म और तत्त्व की बात जानने का प्रयत्न ही नहीं करते। हिंदू को राम और मुसलमान को रहमान प्यारा है, लेकिन दोनों यह नहीं समझते कि राम और रहीम में कोई अंदर नहीं है। राम और रहमान के भेद को लेकर ही दोनों आपस में लड़ मरते थे और यह सब भ्रम में भूले हुए हैं। अंत में उनको पछताना होगा, मैंने ऐसे बहुत से लोगों को देखा है, जो नियम और धर्म के कट्टर हैं। सुबह स्नान कर मूर्ति पूजा करते हैं और अपनी आत्मा की आवाज (आत्म ज्ञान) को नहीं समझते हैं और उनका ज्ञान थोथा है, जो घमण्ड में डूबे हैं। पीपल, पत्थर एवं तीरथ, व्रत, माला, छापा, तिलक में ही सब भूल बैठे हैं, जो माया और अभिमान वंश में घर-घर में मंत्र देते फिरते हैं। ऐसे गुरु और शिष्य अंतकाल में बहुत पछताते हैं। आडंबर से भरपूर लोग अपने आपको समझदार बताते हैं, लेकिन कबीर मानते हैं कि इनमें किसी में भी प्रभु की लगन नहीं है और न ही प्रभु के लिए दीवानापन।

कबीर ने इस भक्ति या हृदय साधना को ही परम वरेण्य माना है। इसके चलते कबीर मानवतावादी नहीं, सर्वात्मवादी हो उठते हैं। भक्ति धर्म की लोक हृदय से सयुक्त कर देती है। इसलिए कबीर शोषण, अत्याचार और पीड़ा के प्रत्येक क्षेत्र में अपना विरोधी स्वर मुखर करते हैं। कबीर की करुणा उन मूक पशुओं के प्रति भी प्रकट होती है, जिनका मांसाहार किया जाता है। मांसाहारी मुसलमानों और शाक्तों दोनों की भर्त्सना कबीर ने की है।

कबीर का अवतरण जिस काल खण्ड में हुआ, उस समय समाज नाना प्रकार की विच्छृंखलताओं से गुजर रहा था। एक ओर इस्लाम के आगमन के पूर्व ही भारतीय सामंतवादी ढाँचा सामाजिक रूढ़ियों के चलते वेगहीन हो चला था। उसकी शोषणवादी प्रवृत्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही थी, दूसरी ओर इस्लाम के आगमन ने इस सामाजिक जटिलता को और भी अधिक जटिल बना दिया।

यद्यपि प्रतिक्रियात्मक तौर पर समाज की जड़ता में तूफानी विक्षोभ उमड़ा, जिसने समूचे समाज को आत्मनिरीक्षण का अवसर प्रदान किया, लेकिन समाज की जड़ता एवं विच्छृंखलता में किंचित कमी होने की बजाए उत्तरोत्तर वृद्धि होती गयी।

समूचे भारतीय परिवेश के धार्मिक होने के कारण शोषण का स्वरूप भी बहुत कुछ धार्मिक लबादा ही ओढ़े था। परन्तु इस समूची विच्छृंखलता का एक धनात्मक परिणाम यह हुआ कि भारतीय समाज का आत्म निरीक्षण दिन प्रतिदिन प्रबल हुआ और किंचित कबीर जैसे महापुरुष संक्रमण काल की इन्हीं स्थितियों के परिणाम थे।

इस्लामी शासन में भारतीय सामंतवादी शासन की जड़ें और भी मजबूत हो गई थीं। सामंतवादी ढाँचे के शोषण का मुख्य आधार देहवाद और अर्थवाद था। देहवाद के अन्तर्गत समूचा समाज विलासी प्रवृत्ति का हो चला था। स्त्री उपभोग्य वस्तु हो गयी थी और नारी की स्वतंत्रता अपदस्थ हो जाने के कारण सामाजिक जड़ता बढ़ती चली जा रही थी।

वैसे भी यह मनोवैज्ञानिक सन्दर्भ है कि जिस समाज में देहवाद को प्राथमिकता दी जाती है, उस समाज को अपने उत्कर्ष के विषय में चिन्ता करने का अवसर नहीं मिल पाता है। इस्लामी शासकों की विलासी प्रवृत्ति के कारण ऐन्द्रियवाद के प्रभुत्व ने समाज को पतनोन्मुख बना दिया।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखक

अनुक्रम

प्रस्तावना *v*

1. कबीर का साहित्यिक परिचय **1**

जीवन परिचय 1

कबीर के माता- पिता 3

स्त्री और संतान 3

काव्यरूप एवं संक्षिप्त परिचय 5

साखी 6

व्यवहार प्रधान साखियाँ 8

चौंतीसा 10

विप्रमतीसी 11

वार 11

थिंती 11

चाँचर 11

बसंत 12

हिंडोला 12

बेलि 13

कहरा 13

बिरहुली 13

	उलटवाँसी	14
	काजी का नाम धरने आना	16
	कबीर कालीन राजनैतिक परिस्थितियाँ	18
	तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति	22
2.	**कबीर के चिंतन**	**23**
	कबीर का प्रेम	45
3.	**कबीर के दर्शन**	**49**
	कबीर भक्ति की साधना	50
4.	**कबीर का समाज दर्शन**	**55**
	धार्मिक पाखंड का खंडन	56
	हिंसा का विरोध	57
	अहंकार का त्याग	57
	जाँति-पाँति का विरोध	57
	सदाचरण, सत्य पर बल	57
	परोपकार की भावना	58
5.	**कबीर की भाषा शैली**	**64**
	भाषा और शैली	64
	पंचमेल खिचड़ी भाषा	65
	कबीरदास का भक्त रूप	68
6.	**कबीर की सामाजिक चेतना**	**69**
	कबीर की सामाजिक चेतना के आयाम	76
7.	**तत्कालीन परिस्थिति पर कबीर का प्रभाव**	**83**
8.	**कबीर ग्रंथावली**	**89**
	ग्रंथावली का संपादन	89
	गुरु	99
	गृहस्थ जीवन	101
	अलौकिक कृत्य	102
	मृत्यु	103
	तात्विक सिद्धांत	104
	व्यावहारिक सिद्धांत	115

काव्यत्व 127
9. कबीर के दोहे 130
10. बीजक 137
मौखिक उपदेश 137
बीजक मूल ग्रंथ 138
बीजक का मुद्रण 139
अनुवाद 140
भाषा 140
बीजक कबीर का सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थ 141
बीजक पदों का गूढ़त्व और सूत्रत्व 141
बीजक की अनेक टीकाएँ 142
11. साखी 143
छंदों में प्रयोग 144
12. सबद 145
अर्थ 145
स्वरूप 146
13. रमैनी 147
प्रकार 147

1

कबीर का साहित्यिक परिचय

जीवन परिचय

महात्मा कबीर का जन्म ऐसे समय में हुआ, जब भारतीय समाज और धर्म का स्वरूप अधंकारमय हो रहा था। भारत की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक अवस्थाएँ सोचनीय हो गयी थी। एक तरफ मुसलमान शासकों की धर्मांधता से जनता त्राहि- त्राहि कर रही थी और दूसरी तरफ हिंदुओं के कर्मकांडों, विधानों एवं पाखंडों से धर्म- बल का ह्रास हो रहा था। जनता के भीतर भक्ति- भावनाओं का सम्यक प्रचार नहीं हो रहा था। सिद्धों के पाखंडपूर्ण वचन, समाज में वासना को प्रश्रय दे रहे थे। नाथपंथियों के अलखनिरंजन में लोगों का हृदय रम नहीं रहा था। ज्ञान और भक्ति दोनों तत्त्व केवल ऊपर के कुछ धनी-मानी, पढ़े-लिखे की बपौती के रूप में दिखाई दे रहा था। ऐसे नाजुक समय में एक बड़े एवं भारी समन्वयकारी महात्मा की आवश्यकता समाज को थी, जो राम और रहीम के नाम पर अज्ञानतावश लड़ने वाले लोगों को सच्चा रास्ता दिखा सके। ऐसे ही संघर्ष के समय में, मस्तमौला कबीर का प्रार्दुभाव हुआ।

जन्म

महात्मा कबीर के जन्म के विषय में भिन्न- भिन्न मत हैं। 'कबीर कसौटी' में इनका जन्म संवत् 1455 दिया गया है। 'भक्ति- सुधा- बिंदु- स्वाद'

में इनका जन्मकाल संवत् 1451 से संवत् 1552 के बीच माना गया है। 'कबीर-चरित्र- बाँध' में इसकी चर्चा कुछ इस तरह की गई है, संवत् चौदह सौ पचपन (1455) विक्रमी ज्येष्ठ सुदी पूर्णिमा सोमवार के दिन, एक प्रकाश रूप में सत्य पुरुष काशी के 'लहर तारा' (लहर तालाब) में उतरे। उस समय पृथ्वी और आकाश प्रकाशित हो गया। समस्त तालाब प्रकाश से जगमगा गया। हर तरफ प्रकाश- ही- प्रकाश दिखने लगा, फिर वह प्रकाश तालाब में ठहर गया। उस समय तालाब पर बैठे अष्टानंद वैष्णव आश्चर्यमय प्रकाश को देखकर आश्चर्य-चकित हो गये। लहर तालाब में महा- ज्योति फैल चुकी थी। अष्टानंद जी ने यह सारी बातें स्वामी रामानंद जी को बतलायी, तो स्वामी जी ने कहा कि वह प्रकाश एक ऐसा प्रकाश है, जिसका फल शीघ्र ही तुमको देखने और सुनने को मिलेगा तथा देखना, उसकी धूम मच जाएगी।

एक दिन वह प्रकाश एक बालक के रूप में जल के ऊपर कमल- पुष्पों पर बच्चे के रूप में पाँव फेंकने लगा। यह पुस्तक कबीर के जन्म की चर्चा इस प्रकार करती है –

'चौदह सौ पचपन गये, चंद्रवार, एक ठाट ठये।
जेठ सुदी बरसायत को पूनरमासी प्रकट भये।।'

जन्म स्थान

कबीर ने अपने को काशी का जुलाहा कहा है। कबीर पंथ के अनुसार उनका निवास स्थान काशी था। बाद में, कबीर एक समय काशी छोड़कर मगहर चले गए थे। ऐसा वह स्वयं कहते हैं –

'सकल जनम शिवपुरी गंवाया।
मरती बार मगहर उठि आया।।'

कहा जाता है कि कबीर का पूरा जीवन काशी में ही गुजरा, लेकिन वह मरने के समय मगहर चले गए थे। कबीर वहाँ जाकर दुःखी थे। वह न चाहकर भी, मगहर गए थे।

'अबकहु राम कवन गति मोरी।
तजीले बनारस मति भई मोरी।।'

कहा जाता है कि कबीर के शत्रुओं ने उनको मगहर जाने के लिए मजबूर किया था। वह चाहते थे कि आपकी मुक्ति न हो पाए, परंतु कबीर तो काशी मरन से नहीं, राम की भक्ति से मुक्ति पाना चाहते थे –

'जौ काशी तन तजै कबीरा
तो रामै कौन निहोटा।'

कबीर के माता- पिता

कबीर के माता- पिता के विषय में भी एक राय निश्चित नहीं है। 'नीमा' और 'नीरू' के घर यह अनुपम ज्योति पैदा हुई थी, या लहर तालाब के समीप विधवा ब्राह्मणी की पाप- संतान के रूप में आकर यह पतितपावन हुए थे, ठीक तरह से कहा नहीं जा सकता है। कई मत यह है कि नीमा और नीरू ने केवल इनका पालन- पोषण ही किया था। एक किवदंती के अनुसार कबीर को एक विधवा ब्राह्मणी का पुत्र बताया जाता है, जिसको भूल से रामानंद जी ने पुत्रवती होने का आशीर्वाद दे दिया था।

एक जगह कबीर ने कहा है –

'जाति जुलाहा नाम कबीरा
बनि बनि फिरो उदासी।'

कबीर के एक पद से प्रतीत होता है कि वे अपनी माता की मृत्यु से बहुत दु:खी हुए थे। उनके पिता ने उनको बहुत सुख दिया था। वह एक जगह कहते हैं कि उसके पिता बहुत 'गुसाई' थे। ग्रंथ साहब के एक पद से विदित होता है कि कबीर अपने वयनकार्य की उपेक्षा करके हरिनाम के रस में ही लीन रहते थे। उनकी माता को नित्य कोश घड़ा लेकर लीपना पड़ता था। जबसे कबीर ने माला ली थी, उनकी माता को कभी सुख नहीं मिला। इस कारण वह बहुत खीज गई थी। इससे यह बात सामने आती है कि उनकी भक्ति एवं संत- संस्कार के कारण उनकी माता को कष्ट था।

स्त्री और संतान

कबीर का विवाह वनखेड़ी बैरागी की पालिता कन्या 'लोई' के साथ हुआ था। कबीर को कमाल और कमाली नाम की दो संतान भी थी। ग्रंथ साहब के एक 'दोहे से विदित होता है कि कबीर का पुत्र कमाल उनके मत का विरोधी था।

बूड़ा बंस कबीर का, उपजा पूत कमाल।
हरि का सिमरन छोड़ि के, घर ले आया माल।

कबीर की पुत्री कमाली का उल्लेख उनकी बाणियों में कहीं नहीं मिलता है। कहा जाता है कि कबीर के घर में रात- दिन मुडियों का जमघट रहने से

बच्चों को रोटी तक मिलना कठिन हो गया था। इस कारण से कबीर की पत्नी झुंझला उठती थी। एक जगह कबीर उसको समझाते हैं –

सुनि अंघली लोई बंपीर।
इन मुड़ियन भजि सरन कबीर॥

जबकि कबीर को कबीर पंथ में, बाल- ब्रह्मचारी और विराणी माना जाता है। इस पंथ के अनुसार कामात्य उसका शिष्य था और कमाली तथा लोई उनकी शिष्या। लोई शब्द का प्रयोग कबीर ने एक जगह कंबल के रूप में भी किया है। वस्तुतः कबीर की पत्नी और संतान दोनों थे। एक जगह लोई को पुकार कर कबीर कहते हैं –

'कहत कबीर सुनहु रे लोई।
हरि बिन राखन हार न कोई॥'

यह हो सकता हो कि पहले लोई पत्नी होगी, बाद में कबीर ने इसे शिष्या बना लिया हो। उन्होंने स्पष्ट कहा है –

'नारी तो हम भी करी, पाया नहीं विचार।
जब जानी तब परिहरि, नारी महा विकार॥'

कबीर साहब निरक्षर थे। उन्होंने अपने निरक्षर होने के संबंध में स्वयं 'कबीर- बीजक' की एक साखी में बताया है, जिसमें कहा गया है कि न तो मैं ने लेखनी को हाथ में लिया, न कभी कागज और स्याही का ही स्पर्श किया। चारों युगों की बातों को उन्होंने केवल अपने मुँह द्वारा जता दिया है –

मसि कागद छूयो नहीं, कलम गही नहिं हाथ।
चारिक जुग को महातम, मुखहिं जनाई बात॥

संत मत के समस्त कवियों में, कबीर सबसे अधिक प्रतिभाशाली एवं मौलिक माने जाते हैं। उन्होंने कविताएँ प्रतिज्ञा करके नहीं लिखी और न उन्हें पिंगल और अलंकारों का ज्ञान था। लेकिन उन्होंने कविताएँ इतनी प्रबलता एवं उत्कृष्टता से कही हैं कि वे सरलता से महाकवि कहलाने के अधिकारी हैं। उनकी कविताओं में संदेश देने की प्रवृत्ति प्रधान है। ये संदेश आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा, पथ- प्रदर्शन तथा संवेदना की भावना से लबरेज हैं। अलंकारों से सुसज्जित न होते हुए भी आपके संदेश काव्यमय हैं। तात्विक विचारों को इन पद्यों के सहारे सरलतापूर्वक प्रकट कर देना ही आपका एक मात्र लक्ष्य था –

तुम्ह जिन जानों गीत हे यहु निज ब्रह्म विचार
केवल कहि समझाता, आतम साधन सार रे॥

कबीर भावना की अनुभूति से युक्त, उत्कृष्ट रहस्यवादी, जीवन का संवेदनशील संस्पर्श करनेवाले तथा मर्यादा के रक्षक कवि थे। आप अपनी काव्य कृतियों के द्वारा पथभ्रष्ट समाज को उचित मार्ग पर लाना चाहते थे।

हरि जी रहे विचारिया साखी कहो कबीर।
यौ सागर में जीव हैं जे कोई पकड़ै तीर।।

कवि के रूप में कबीर जीव के अत्यंत निकट हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में सहजता को प्रमुख स्थान दिया है। सहजता उनकी रचनाओं की सबसे बड़ी शोभा और कला की सबसे बड़ी विशेषता मानी जाती है। उनके काव्य का आधार यथार्थ है। उन्होंने स्वयं स्पष्ट रूप से कहा है कि मैं आँख का देखा हुआ कहता हूँ और तू कागज की लेखी कहता है –

मैं कहता हूँ आखिन देखी,
तू कहता कागद की लेखी।

वे जन्म से विद्रोही, प्रकृति से समाज- सुधारक एवं प्रगतिशील दार्शनिक तथा आवश्यकतानुसार कवि थे। उन्होंने अपनी काव्य रचनाएँ इस प्रकार कही हैं कि उसमें आपके व्यक्तित्त्व का पूरा- पूरा प्रतिबिंब विद्यमान है।

कबीर की प्रतिपाद्य शैली को मुख्य रूप से दो भागों में बाँटा गया है – इनमें प्रथम रचनात्मक, द्वितीय आलोचनात्मक। रचनात्मक विषयों के अंतर्गत सतगुरु, नाम, विश्वास, धैर्य, दया, विचार, औदार्य, क्षमा, संतोष आदि पर व्यावहारिक शैली में भाव व्यक्त किया गया है। दूसरे पक्ष में वे आलोचक, सुधारक, पथ- प्रदर्शक और समन्वयकर्ता के रूप में दृष्टिगत होते हैं। इस पक्ष में उन्होंने चेतावनी, भेष, कुसंग, माया, मन, कपट, कनक, कामिनी आदि विषयों पर विचार प्रकट किये हैं।

काव्यरूप एवं संक्षिप्त परिचय

कबीर की रचनाओं के बारें में कहा जाता है कि संसार के वृक्षों में जितने पत्ते हैं तथा गंगा में जितने बालू- कण हैं, उतनी ही संख्या उनकी रचनाओं की है –

जेते पत्र वनस्पति औ गंगा की रेन।
पंडित विचारा का कहै, कबीर कही मुख वैन।।

विभिन्न समीक्षकों तथा विचारकों ने कबीर के विभिन्न संग्रहों का अध्ययन करके निम्नलिखित काव्यरूप पाये हैं –

1. साखी,
2. पद,
3. रमेनी,
4. चौंतीसा,
5. वावनी,
6. विप्रमतीसी,
7. वार,
8. थिंती,
9. चाँवर,
10. बसंत,
11. हिंडोला,
12. बेलि,
13. कहरा,
14. विरहुली और
15. उलटवाँसी।

साखी

साखी रचना की परंपरा का प्रारंभ गुरु **गोरखनाथ** तथा **नामदेव** के समय से प्राप्त होता है। साखी काव्यरूप के अंतर्गत प्राप्त होने वाली, सबसे प्रथम रचना गोरखनाथ की जोगेश्वरी साखी है। कबीर की अभिव्यंजना शैली बड़ी शक्तिशाली है। प्रतिपाद्य के एक- एक अंग को लेकर इस निरक्षर कवि ने सैकड़ों साखियों की रचना की है। प्रत्येक साखी में अभिनवता को बड़ी कुशलता से प्रकट किया गया है। उन्होंने इसका प्रयोग नीति, व्यवहार, एकता, समता, ज्ञान और वैराग्य आदि की बातों को बताने के लिए किया है। अपनी साखियों में कबीर ने दोहा छंद का प्रयोग सर्वाधिक किया है।

कबीर की साखियों पर गोरखनाथ और नामदेव जी की साखी का प्रभाव दिखाई देता है। गोरखनाथ की तरह से कबीर ने भी अपनी साखियों में दोहा जैसे छोटे छंदों में अपने उपदेश दिये।

संत कबीर की रचनाओं में साखियाँ सर्वाधिक पायी जाती है। कबीर बीजक में 353 साखियाँ, कबीर ग्रंथावाली में 919 साखियाँ हैं। आदिग्रंथ में साखियों की संख्या 243 है, जिन्हें श्लोक कहा गया है।

प्राचीन धर्म प्रवर्त्तकों के द्वारा, साखी शब्द का प्रयोग किया गया। ये लोग जब अपने गुरुजनों की बात को अपने शिष्यों अथवा साधारणजनों को कहते, तो उसकी पवित्रता को बताने के लिए साखी शब्द का प्रयोग किया करते थे। वे साखी देकर, यह सिद्ध करना चाहते थे कि इस प्रकार की दशा का अनुभव अमुक- अमुक पूर्ववर्ती गुरुजन भी कर चुके हैं। अतः प्राचीन धर्म प्रवर्तकों द्वारा प्रतिपादित ज्ञान को शिष्यों के समक्ष, साक्षी रूप में उपस्थित करते समय जिस काव्यरूप का जन्म हुआ, वह साखी कहलाया।

संत कबीर की साखियाँ, निर्गुण साक्षी के साक्षात्कार से उत्पन्न भावोन्मत्तता, उन्माद, ज्ञान और आनंद की लहरों से सराबोर हैं। उनकी साखियाँ ब्रह्म विद्या बोधिनी, उपनिषदों का जनसंस्करण और लोकानुभव की पिटारी हैं। इनमें संसार की असारता, माया मोह की मृग- तृष्णा, कामक्रोध की क्रूरता को भली- भांति दिखाया गया है। ये सांसारिक क्लेश, दुख और आपदाओं से मुक्त कराने वाली जानकारियों का भण्डार हैं। संत कबीर के सिद्धांतों की जानकारी का सबसे उत्तम साधन उनकी साखियाँ हैं।

साखी आंखी ग्यान को समुझि देखु मन माँहि
बिन साखी संसार का झगरा छुटत नाँहि॥

विषय की दृष्टि से कबीर साहब की सांखियों को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया गया है –

1. लौकिक भाव प्रधान, और
2. पारलौकिक भाव प्रधान।

लौकिक भाव प्रधान साखियाँ भी तीन प्रकार की हैं –

1. संतमत स्वरूप बताने वाली,
2. पाखण्डों का विरोध करने वाली, और
3. व्यवहार प्रधान।

संतमत का स्वरूप बताने वाली साखियाँ –

कबीर साहब ने अपनी कुछ साखियों में संत और संतमत के संबंध में अपने विचार प्रकट किए हैं –

निर बेरी निहकामता साई सेती नेह।
विषिया सूँन्यारा रहे संतरि को अंग एह॥

कबीर साहब की दृष्टि में संत का लक्ष्य धन संग्रह नहीं है –

सौंपापन कौ मूल है एक रुपैया रोक।
साधू है संग्रह करै, हारै हरि सा थोक।
संत व बांधै गाँठरी पेट समाता लेई।
आगे पीछे हरि खड़े जब माँगै तब दाई।

संत अगर निर्धन भी हो, तो उसे मन छोटा करने की आवश्यकता नहीं है–

सठगंठी कोपीन है साधू न मानें संक।
राम अमल माता रहे गिठों इंद्र को रंक।

कबीर साहब परंपरागत रुढ़ियों, अंधविश्वासों, मिथ्याप्रदर्शनों एवं अनुपयोगी रीति- रिवाजों के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने हिंदू- मुसलमान दोनों में ही फैली हुई कुरीतियों का विरोध अपनी अनेक साखियों में किया है।

व्यवहार प्रधान साखियाँ

कबीर साहब की व्यवहार प्रधान साखियाँ, नीति और उपदेश प्रधान है। इसमें संसभू के प्रत्येक क्षेत्र में उचित व्यवहार की रीति बताई गई हैं। इन साखियों में मानव मात्र के कल्याणकारी अनुभव का अमृत छिपा हुआ है। पर निंदा, असत्य, वासना, धन, लोभ, क्रोध, मोह, मदमत्सर, कपट आदि का निषेध करके, वे सहिष्णुता, दया, अहिंसा, दान, धैर्य, संतोष, क्षमा, समदर्शिता, परोपकार तथा मीठे वाचन आदि के लिए आग्रह किया गया है। वे त्याज्य कुकर्मों को गिना कर बताते हैं –

गुआ, चोरी, मुखबरी, ब्याज, घूस, परमान।
जो चाहे दीदार को एती वस्तु निवार।।

विपत्ति में धैर्य धारण करने के लिए कहते हैं –

देह धरे का दंड है सब काहू पै होय।
ज्ञानी भुगतै ज्ञानकरि मूरख भुगतै रोय।।

वह अपनी वाणी पर काबू रखने और संयम पर बल देते हुए कहते हैं –

ऐसी बानि बोलिए मन का आपा खोय।
ओरन को सीतल करै, आपहु सीतल होय।

पारलौकिक भाव प्रधान साखियाँ

संत कबीर साहब इस प्रकार की अपनी साखियों में नैतिक, अध्यात्मिक, सांसारिक, परलौकिक इत्यादि विषयों का वर्णन किया है।

कुछ साखियाँ –

राम नाम जिन चीन्हिया, झीना पं तासु।
नैन न आवै नींदरी, अंग न जायें मासु।
बिन देखे वह देसकी, बात कहे सो कूर।
आपुहि खारी खात है, बैचत फिरे कपूर।

पद (शब्द)

संत कबीर ने अपने अनुभवों, नीतियों एवं उपदेशों का वर्णन, पदों में भी किया है। पद या शब्द भी एक काव्य रूप है, जिसको प्रमुख दो भागों में बाँटा गया है –

1. लौकिक भाव प्रधान,
2. पारलौकिक भाव प्रधान।

लौकिक भाव प्रधान पदों में सांसारिक भावों एवं विचारों का वर्णन किया गया है। इनको भी दो भागों में विभाजित किया गया है –

1. धार्मिक पाखण्डों का खंडन करने वाले पद, और
2. उपदेशात्मक और नीतिपरक पद।

संत कबीर जातिवाद, ऊँच- नीच की भावना एवं दिखावटी धार्मिक क्रिया- कलापों के घोर विरोधी थे। उन्होंने विभिन्न धर्मों की प्रचलित मान्यताओं तथा उपासना पद्धतियों की अलग- अलग आलोचना की है। वे वेद और कुरान के वास्तविक ज्ञान और रहस्य को जानने पर बल देते हैं –

वेद कितेब कहौ झूठा।
झूठा जो न विचारै॥
झंखत बकत रहहु निसु बासर, मति एकौ नहिं जानी।
सकति अनुमान सुनति किरतु हो, मैं न बदौगा भाई॥
जो खुदाई तेरि सुनति सुनति करतु है, आपुहि कटि कयों न आई।
सुनति कराय तुरुक जो होना, औरति को का कहिये॥

रमैनी

रमैनी भी संत कबीर द्वारा गाया गया काव्यरूप है। इसमें चौपाई दो छंदों का प्रयोग किया गया है। रमैनी कबीर साहब की सैद्धांतिक रचनाएँ हैं। इसमें

परमतत्त्व, रामभक्ति, जगत और ब्रह्म इत्यादि के बारे में विस्तारपूर्वक विचार किया गया है।

जस तू तस तोहि कोई न जान। लोक कहै सब आनाहि आना।
वो है तैसा वोही जाने। ओही आहि आहि नहिं आने।।

संत कबीर राम को सभी अवतारों से परे मानते हैं –

ना दसरथ धरि औतरि आवा।
ना लंका का राव सतावा।।
अंतर जोति सबद एक नारी। हरि ब्रह्मा ताके त्रिपुरारी।।
ते तिरिये भग लिंग अनंता। तेउ न जाने आदि औ अंतर।।

एक रमैनी में वे मुसलमानों से प्रश्न पूछते हैं–

दर की बात कहाँ दरबेसा। बादशाह है कवने भेष।
कहां कंच कहँ करै मुकाया। मैं तोहि पूंछा मुसलमाना।।
लाल गरेद की नाना बना। कवर सुरहि को करहु सलाया।।
काजी काज करहु तुम कैसा। घर- घर जबह करवाहु भैसा।।

चौंतीसा

चौंतीसा नामक काव्यरूप केवल 'कबीर बीजक' में ही प्रयोग किया गया है। इसमें देवनागरी वर्णमाला के स्वरों को छोड़कर, केवल व्यंजनों के आधार पर रचनाएँ की गई हैं –

पापा पाप करै सम कोई। पाप के करे धरम नहिं होई।
पापा करै सुनहु रे भाई। हमरे से इन किछवो न पाई।
जो तन त्रिभुवन माहिं छिपावै। तत्तहि मिले तत्त सो पावै।
थाथा थाह थाहि नहिं जाई। इथिर ऊथिर नाहिं रहाई।

बावनी

बावनी वह काव्यरूप है, जिसकी द्विपदियों का प्रारंभ नागरी लिपि के बावन वर्णों में से प्रत्येक के साथ क्रमशः होता है। बावनी को इसके संगीतानुसार गाया जाने का रिवाज पाया जाता है। विषय की दृष्टि से यह रचनाएँ आध्यात्मिकता से परिपूर्ण ज्ञात होती हैं।

ब्राह्मण होके ब्रह्म न जानै। घर महँ जग्य प्रतिग्रह आनै
जे सिरजा तेहि नहिं पहचानैं। करम भरम ले बैठि बखानै।

ग्रहन अमावस अवर दुईजा।
सांती पांति प्रयोजन पुजा।।

विप्रमतीसी

विप्रमतीसी नामक काव्य रूप भी केवल 'कबीर बीजक' में पाया जाता है। इसमें ब्राह्मणों के दर्प तथा मिथ्याभिमान की आलोचना की गई है। इसका संबंध विप्रमति (ब्राह्मणों की बुद्धि) से बताया जाता है।

ब्राह्मणों की मति की आलोचना करने के लिए, तीस पंक्तियों में गठित काव्यरूप को विप्रमतीसी कहा गया है।

वार

सप्ताह के सातों वारों (दिनों) के नामों को क्रमशः लेकर, की गई उपदेशात्मक रचनाओं वाले काव्यरूप को 'वार' कहा गया है। यह काव्य रूप की रचना केवल आदिग्रंथ में ही प्राप्त होती है।

थिंती

इस काव्य रूप का प्रयोग तिथियों के अनुसार छंद रचना करके साधना की बातें बताने के लिए किया गया है। संत कबीर का यह काव्य रूप भी केवल आदिग्रंथ में पाया जा सकता है।

चाँचर

चाँचर बहुत प्राचीन काल से प्रचलित काव्यरूप है। कालीदास तथा बाणभट्ट की रचनाओं में चर्चरी गान का उल्लेख मिलता है। प्राचीन काल में इसको चर्चरी या चाँचरी कहा जाता था। संत कबीर ने भी अपनी रचनाओं में इसको अपनाया है। 'कबीर बीजक' में यह काव्य रूप प्राप्त होता है। कहा जाता है कि कबीर के समय में इसका पूर्ण प्रचलन था। कबीर ने इसका प्रयोग आध्यात्मिक उपदेशों को साधारण जन को पहुँचानें के लिए किया है।

जारहु जगका नेहरा, मन का बौहरा हो।
जामें सोग संतान, समुझु मन बोरा हो।
तन धन सों का गर्वसी, मन बोरा हो।
भसम- किरिमि जाकि, समुझु मन बौरा हो।

बिना मेवका देव धरा, मन बौरा हो।
बिनु करगिल की इंट, समुझु मन बौरा हो।

बसंत

संत कबीर साहब का एक अन्य काव्यरूप बसंत है। 'बीजक', 'आदिग्रंथ' और 'कबीर ग्रंथावली' तीनों में इसको देखा जा सकता है। बसंत ऋतु में, अभितोल्लास के साथ गाई जाने वाली पद्यों को फागु, धमार, होली या बसंत कहा जाता है। कबीर ने इसका उपयोग लोकप्रचलित काव्यरूप को ग्रहण कर, अपने उद्देश्य को जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए किया है। एक पत्नी अपने पति की प्रशंसा करते हुए कहती है –

भाई मोर मनुसा अती सुजान, धद्य कुटि- कुटि करत बिदान।
बड़े भोर उठि आंगन बाढु, बड़े खांच ले गोबर काढ़
बासि- भात मनुसे लीहल खाय, बड़ धोला ले पानी को गाय
अपने तृया बाधों पाट, ले बेचौंगी हाटे हाट
कहँहि कबिर ये हरिक काज, जोइया के डिंग रहिकवनि लाज

हिंडोला

सावन के महीने में महिलाएँ हिंडोला झूलने के साथ- साथ, गीत भी गाती है। इन्हीं गीतों को अनेक स्थानों पर हिंडोला के नाम से जाना जाता है। संत कबीर ने इसी जनप्रचलित काव्यरूप को अपने ज्ञानोपदेश का साधन बनाया है। वह पूरे संसार को एक हिंडोला मानते हैं। वे इस प्रकार वर्णन करते हैं –

भ्रम का हिंडोला बना हुआ है। पाप पुण्य के खंभे हैं। माया ही मेरु है, लोभ का मरुवा है, विषय का भंवरा, शुभ- अशुभ की रस्सी तथा कर्म की पटरी लगी हुई है। इस प्रकार कबीर साहब समस्त सृष्टि को इस हिंडोले पर झूलते हुए दिखाना चाहते हैं –

भरम- हिंडोला ना, झुलै संग जग आय।
पाप- पुण्य के खंभा दोऊ मेरु माया मोह।
लोभ मरुवा विष भँवरा, काम कीला ठानि।
सुभ- असुभ बनाय डांडी, गहैं दोनों पानि।
काम पटरिया बैठिके, को कोन झुलै आनि।

झुले तो गन गंधर्व मुनिवर, झुलै सुरपति इंद
झुलै तो नारद सारदा, झुलै व्यास फनींद।

बेलि

संत कबीर की बेलि उपदेश प्रधान काव्यरूप है। इसके अंतर्गत सांसारिक मोह ममता में फँसे जीव को उपदेश दिया गया है। 'कबीर बीजक' में दो रचनाएँ बेलि नाम से जानी जाती है। इसकी पंक्ति के अंत में 'हो रमैया राम' टेक को बार- बार दुहराया गया है।

कबीर साहब की एक बेलि –

हंसा सरवर सरीर में, हो रमैया राम।
जगत चोर घर मूसे, हो रमैया राम।
जो जागल सो भागल हो, रमैया राम।
सावेत गेल बिगोय, हो रमैया राम।

कहरा

कहरा काव्यरूप में क्षणिक संसार के मोह को त्याग का राम का भजन करने पर बल दिया जाता है। इसके अंतर्गत यह बताया जाता है कि राम के अतिरिक्त अन्य देवी- देवताओं की पूजा करना व्यर्थ है। यह कबीर की रचनाओं का जन- प्रचलित रूप है –

रामनाम को संबहु बीरा, दूरि नाहिं दूरि आसा हो।
और देवका पूजहु बौरे, ई सम झूठी आसा हो।
उपर उ कहा भौ बौरे, भीतर अजदूँ कारो हो।
तनके बिरघ कहा भौ वौरे, मनुपा अजहूँ बारो हो।

बिरहुली

बिरहुली का अर्थ सर्पिणी है। यह शब्द बिरहुला से बना है, जिसका अर्थ सर्प होता है। यह शब्द लोक में सर्प के विष को दूर करने वाले गायन के लिए प्रयुक्त होता था। यह गरुड़ मंत्र का प्राकृत नाम है। गाँव में इस प्रकार के गीतों को बिरहुली कहा जाता है। कबीर साहब की बिरहुली में विषहर और बिरहुली दोनों शब्दों का प्रयोग किया गया है। मनरूपी सर्प के डस लेने पर कबीर ने बिरहुली कहा –

आदि अंत नहिं होत बिरहुली। नहिं जरि पलौ पेड़ बिरहुली।
निसु बासर नहिं होत बिरहुली। पावन पानि नहिं भूल बिरहुली।
ब्रह्मादिक सनकादि बिरहुली। कथिगेल जोग आपार बिरहुली।
बिषहा मंत्र ने मानै बिरहुली। गरुड़ बोले आपार बिरहुली।

उलटवाँसी

बंधी बधाई विशिष्ट अभिव्यंजना शैली के रूप में, उलटवाँसी भी एक काव्यरूप है। इसमें आध्यात्मिक बातों का लोक विपरीत ढंग से वर्णन किया जाता है। इसमें वक्तव्य विषय की प्रस्तुत करने का एक विशेष ढंग होता है –

तन खोजै तब पावै रे।
उलटी चाल चले गे प्राणी, सो सरजै घर आवेरो
धर्म विरोध संबंधी उलटवाँसियां
अम्बर बरसै धरती भीजे, यहु जानैं सब कोई।
धरती बरसे अम्बर भीजे, बूझे बिरला कोई।
मैं सामने पीव गोहनि आई।
पंच जना मिलिमंडप छायौ, तीन जनां मिलि लगन लिखाई।

सामान्यरूप में कबीर साहब ने जन– प्रचलित काव्यरूप को अपनाया है। जन– प्रचलित होने के कारण ही सिंद्धों, नाथों, संतों और भक्तों के द्वारा इनको ग्रहण किया गया।

विचारों और भावों के साथ ही, काव्यरूपों के क्षेत्र में भी कबीर साहब को आदर्श गुरु तथा मार्गदर्शक माना गया है। परवर्ती संतों तथा भक्तों ने उनके विचारों और भावों के साथ– साथ काव्यरूपों को भी अपनाया। कबीर साहब ने इन काव्यरूपों को अपना करके महान और अमर बना दिया।

कबीर के काव्य में दाम्पत्य एवं वात्सल्य के द्योतक प्रतीक पाये जाते हैं। उनकी रचनाओं में सांकेतिक प्रतीक, पारिभाषिक प्रतीक, संख्यामूलक प्रतीक, रूपात्मक प्रतीक तथा प्रतीकात्मक उलटवाँसियों के सुंदर उदाहरण पाए जाते हैं।

कबीर के जीवन से संबंधित कुछ चमत्कारी घटनाएँ

नीमा और नीरू को बालक कबीर का मिलना

नीरू जुलाहा काशी नगरी में रहता था। एक दिन नीरू अपना गवना लेने के लिए, ससुराल गया। नीरू अपनी पत्नी नीमा को लेकर आ रहा था। रास्ते में

नीमा को प्यास लगी। वे लोग पानी पीने के लिए लहर तालाब पर गए। पानी पीने के पश्चात्, नीमा जैसे ही उठी, उसने तालाब में कमल के पुष्पों पर एक अति सुंदर बालक को हाथ-पाँव मारते देखा। वह बहुत ही प्रसन्न हुई। वह तालाब के भीतर गई और बालक को अपनी गोद में लेकर बाहर।

नीरू नाम जुलाहा, गमन लिये घर जाय।
तासु नारि बढ़ श्रागिनी, जल में बालक पाय।

जुलाहे ने बालक को देखकर पूछा, यह किसका है और तुम कहाँ से उठाकर लाई हो ? नीमा ने कहा कि इसे उसने तालाब में पाया है। नीरू ने कहा, इसे जहाँ से लायी है, वहीं रख आ। मगर नीमा ने कहा कि इतने सुंदर बच्चे को मैं अपने पास रखूँगी। नीरू ने अपनी स्त्री से कहा, मुझपर लोग हँसेंगे, कहेंगे कि गवना में मैं अपनी स्त्री के साथ, बालक ले आया। नीरू को तत्कालीन समाज के लोगों का डर लग रहा था। उसने कहा –

'नीरू देख रिसवाई, बालक देतू डार।
सब कुटम्ब हांसी करे, हांसी मारे परिवार।'

नीमा, नीरू की कोई बात मानने को तैयार नहीं हुई, तब नीरू उसको मारने- पीटने पर तत्पर हो गया और झिड़कियाँ देने लगा। नीमा अपनी जगह पर चुपचाप खड़ी सोच रही थी, इतने में बालक स्वयं ही बोल उठा,

तब साहब हूँ कारिया, लेचल अपने धाम।
युक्ति संदेश सुनाई हौं, मैं आयो यही काम।
पूरब जनम तुम ब्राह्मन, सुरति बिसारी मौहि।
पिछली प्रीति के कारने, दरसन दीनो तोहि।

हे नीमा ! मैं तुम्हारे पूर्व जन्म के प्रेम के कारण तुम्हारे पास आया हूँ। तुम मुझको मत फेंको और अपने घर ले चलो। यदि तुम मुझको अपने घर ले गयी, तो मैं तुमको आवागमन (जन्म- मरण) के झंझट से छुड़ा करके, मुक्त कर दूँगा। तुम्हारे सारे दुख व संताप मैं हर लूँगा।

बालक के इस प्रकार बोलने से, नीमा निर्भय हो गयी और अपने पति से नहीं डरी। तब नीरू भी बालक को सुनकर कुछ नहीं बोला –

कर गहि बगि उठाइया, लीन्हों कंठ लगाय
नारि पुरुष दोउ हरषिया, रंक महा धन पाय।

वे दोनों प्रसन्नतापूर्वक बालक को लेकर अपने घर चले गए।

बालक का नामकरण करने ब्राह्मण का आना

काशी के लोगों को जब मालूम हुआ कि नीरू अपनी पत्नी के साथ एक बालक भी लाया है, तो लोग जमा होकर हंसने लगे। नीरू ने तब बालक के बारे में सारी बातें सुनाई।

नीरू बालक का नाम धरवाने के लिए, ब्राह्मण के पास गया। जब ब्राह्मण अपना पत्र लिए नाम के बारे में विचार ही रहा था कि बालक ने कहा, ऐ ब्राह्मण ! मेरा नाम कबीर है। दूसरा नाम रखने की चिंता मत करो। यह बात सुनकर वहाँ इकट्ठा सभी लोग चकित हो गए। हर तरफ इस बात की चर्चा होने लगी कि नीरू के घर में एक बच्चा आया है, वह बातें करता है।

साखी – कासी उमगी गुल श्रया, मोमिनका का घर घेर।
कोई कहे ब्रह्मा विष्णु है, कोई कह इंद्र कुबेर।।
कोई कहन वरुन धर्मराय है, कोई कोई कहे इस,
सोलह कला सुमार गति, कोई कहे जगदीश।।

काजी का नाम धरने आना

ब्राह्मण के चले जाने पर, नीरू ने काजी को बुलाया और बालक का नाम रखने के लिए कहा। काजी, कुरान और दूसरी किताबें खोलकर बालक का नाम देखने लगा। कुरान में काजी को चार नाम मिले–कबीर, अकबर, किबरा और किबरिया। ये चारों नाम देखकर काजी अपने दांतों के तले उँगलियाँ दबाने लगा। वह हैरान होकर बार– बार कुरान खोलकर देखता था, लेकिन समस्त कुरान काजी को इन्हीं चार नामों से भरा दिखाई देता था। काजी के मन में अत्यंत संदेह उत्पन्न होने लगा कि ये चारों नाम तो खुदा के हैं। काजी गंभीर चिंता में डूब गया कि क्या करना चाहिए। हमारे धर्म की प्रतिष्ठा दाव पर लग गई है। इस बात को गरीबदास ने इस प्रकार कहा है–

काजी गये कुरान ले, धर लड़के का नाव।
अच्छर अच्छरों में फुरा, धन कबीर वहि जाँव
सकल कुरान कबीर है, हरफ लिखे जो लेख।
काशी के काजी कहै, गई दीन की टेक।

जब काशी के सभी काजियों को यह समाचार मिला, तो सभी बड़े ही चिंतित हुए। वे कहने लगे कि अत्यंत आश्चर्य का विषय है कि समस्त कुरान में कबीर ही कबीर है। सभी सोचते रहे, क्या उपाय किया जाए कि इस जुलाहे

के पुत्र का इतना बड़ा नाम न रखा जा सके। पुनः सभी काजियों ने कुरान खोलकर देखा, तो अब भी वही चारों नाम दिखाई दे रहे थे।

काजियों द्वारा नीरू को कबीर की हत्या कर देने की सलाह देना

काशी के काजी नाम के बारे में कोई दूसरा उपाय न ढूंढ सकें, तो आपस में विचार करके नीरू से कहा कि तू इस बालक को अपने घर के भीतर ले जाकर मार डाल, नहीं तो तू काफिर हो जाएगा। जुलाहा काजियों की बात में आ गया और वह कबीर को मार डालने के लिए अपने घर के भीतर ले गया। नीरू जुलाहे ने कबीर के गले पर छुरी मारना शुरु कर दिया। वह छुरी गले में एक ओर से दूसरी ओर पार निकल गयी, न कोई जख्म हुआ और न ही खून का एक बूंद भी निकला। इतना ही नहीं गर्दन पर छुरी का चिह्न भी नहीं था। तब कबीर बोले कि, ऐ नीरू ! मेरा कोई माता- पिता नहीं है, न मैं जन्मता हैं, न मरता हूँ, न मुझको कोई मार सकता है, न मैं किसी को मार सकता हूँ और न ही मेरा शरीर है। तुमको दिखाई देने वाला शरीर तुम्हारी भावना मात्र शब्दरूपी है। यह बात सुनकर जुलाहा और जुलाहिन अत्यंत भयभीत हुए। इसके साथ- साथ समस्त काशी में हुल्लड़ मच गया कि बालक वार्तालाप करता है।

अंत में विवश होकर, काजियों ने बालक का नाम कबीर ही रखा। कोई इसको बदल न सका।

बालक कबीर का दूध पीना

बालक कबीर नीरू के घर में कुछ खाते- पीते नहीं थे। इसके बावजूद उसके शरीर में किसी तरह की कोई कमी नहीं हो रही थी। नीरू और नीमा को इस बात पर चिंता हुई। वे दोनों सभी लोगों से पूछते- फिरते कि बालक क्यों नहीं खाता है, उसको खाना खिलाने का क्या उपाय हो सकता है ?

दुध पिवे न अन्न भखे, नहि पलने झूलंत।
अधर अमान ध्यान में, कमल कला फूलंत।।

नीमा और नीरू की बात सुनकर प्रत्येक व्यक्तियों ने अपने- अपने विचार दिये और कई ने तो प्रयोग भी करके देखा, पर कोई लाभ नहीं।

अंत में किसी व्यक्ति ने नीरू को सलाह दी कि रामानंद जी से मिलना चाहिए। स्वामी रामानंद जी को स्थानीय लोग बड़े सिद्ध व त्रिकालदर्शी मानते थे। नीमा- नीरू स्वामी जी के आश्रम गये, किंतु इन लोगों को वहाँ प्रवेश नहीं

मिला, क्योंकि स्वामी जी के आश्रम में हिंदुओं की भी बहुत- सी जातियों को प्रवेश नहीं मिलता था। कहा जाता है कि स्वामी जी शूद्रो को देखना भी नहीं चाहते थे। नीमा- नीरू तो मुसलमान थे। मिलने का कोई अवसर न देखकर इन दोनों ने अपनी बात दूसरे व्यक्ति के माध्यम से स्वामी जी के पास पहुँचायी। स्वामी जी ने ध्यान धर कर बतलाया कि एक कोरी (कुमारी) बछिया लाकर बालक की दृष्टि के सामने खड़ी कर दो। उस बछिया से जो दूध निकलेगा, वह दूध बालक को पिलाने से वह पियेगा। नीमा और नीरू ने ऐसा ही किया। उस दिन से बालक कबीर दूध पीने लगा।

कबीर कालीन राजनैतिक परिस्थितियाँ

कबीर का काल संक्राति का काल था। तत्कालीन राजनीतिक वातावरण पूर्ण रूप से विषाक्त हो चुका था। इस समय की राजनीतिक व्यवस्था को बहुत अंश तक मुल्ला और पुजारी प्रेरित करते थे। हिंदू- मुसलमानों के भीतर भी निरंतर ईर्ष्या और द्वेष का बोलबाला था। तत्कालीन समृद्ध धर्मों बौद्ध, जैन, शैव एवं वैष्णवों के अंदर विभिन्न प्रकार की शाखाएँ निकल रही थी। सभी धर्मों के ठेकेदार आपस में लड़ने एवं झगड़ने में व्यस्त थे।

लोदी वंश का सर्वाधिक यशस्वी सुल्तान, सिकंदर शाह सन् 1489 ई. में गद्दी पर बैठा। सिकंदर को घरेलू परिस्थिति एवं कट्टर मुसलमानों का कड़ा विरोध सहना पड़ा। दुहरे विरोध के कारण वह अत्यंत असहिष्णु हो उठा था। सिकंदर शाह के तत्कालीन समाज में आंतरिक संघर्षों एवं विविध धार्मिक मतभेदों के कारण, भारतीय संस्कृति की केंद्रीय दृष्टि समाप्तप्राय हो गयी थी। इसी जनशोषित समाज में लौह पुरुष महात्मा कबीर का जन्म हुआ। शक्तिशाली लोगों ने ऐसे- ऐसे कानून बना लिए थे, जो कानून से बड़े थे और इसके द्वारा वह लोगों का शोषण किया करते थे। धर्म की आड़ में ये शोषक वर्ग अपनी चालाकी को देवी विधान से जोड़ देता था। तत्कालीन शासन- तंत्र और धर्म- तंत्र को देखते हुए, महात्मा कबीर ने जो कहा, इससे उनकी बगावत झलकती है-

दर की बात कहो दरवेसा बादशाह है कौन भेसा
कहाँ कूच कर हि मुकाया, मैं तोहि पूछा मुसलमाना
लाल जर्द का ताना- बाना कौन सुरत का करहु सलामा।

नियमानुसार शासनतंत्र के कुछ वैधानिक नियम होते हैं, जिनके तहत सरकारी कार्यों को संपादित किया जाता है, लेकिन कबीर के काल में ऐसा कोई नियम नहीं था, इसीलिए वे कहते हैं 'बादशाह तुम्हारा वेश क्या है ? और तुम्हारा मूल्य क्या है ? तुम्हारी गति कहाँ है ? किस सूरत को तुम सलाम करते हो ? इस प्रकार राजनीतिक अराजकता तथा घोर अन्याय देखकर उनका हृदय वेदना से द्रवित हो उठता है। धार्मिक कट्टरता के अंतर्गत मनमाने रूप से शासन तंत्र चल रहा था, जिसमें साधारण जनता का शोषण बुरी तरह हो रहा था। कबीर के लिए यह स्थिति असहनीय हो रही थी।

काजी काज करहु तुम कैसा, घर- घर जब हकरा बहु बैठा।
बकरी मुरगी किंह फरमाया, किसके कहे तुम छुरी चलाया।

कबीर पूछते हैं 'काजी तुम्हारा क्या नाम है? तुम घर पर जबह करते हो? किसके हुक्म से तुम छुरी चलाते हो ?

दर्द न जानहु, पीर कहावहु, पोथा पढ़ी- पढ़ी जग भरमाबहु

काजी तुम पीर कहलाते हो, लेकिन दूसरों का दर्द नहीं समझते हो। गलत बातें पढ़- पढ़ कर और सुनाकर तुम समाज के लोगों को भ्रम में डालते हो।

उपर्युक्त बातों से यह सिद्ध होता है कि तत्कालीन समाज में धर्म की आड़ में सब तरह के अन्याय और अनुचित कार्य हो रहे थे। निरीह जनता के पास इस शोषण के खिलाफ आवाज उठाने की शक्ति नहीं थी। कबीर ने इस चालाक लोक वेद समर्पित देवी विधान के खिलाफ आवाज उठायी।

दिन को रोजा रहत है, राज हनत हो गाय,
येहि खून, वह वंदगी, क्योंकर खुशी खुदाय।

दिन में रोजा का व्रत रखते हो और रात में गाय की हत्या करते हो ? एक ओर खून जैसा पाप और दूसरी ओर ईश बंदगी। इससे भगवान कभी भी प्रसन्न नहीं हो सकते। इस प्रकार एक गरीब कामगार कबीर ने शोषक वर्ग के शिक्षितों, साधन संपन्नों के खिलाफ एक जंग को बिगुल बजाया।

इक दिन ऐसा होइगा, सब लोग परै बिछोई।
राजा रानी छत्रपति, सावधान किन होई।।

कबीर के कथनानुसार परिवर्तन सृष्टि का नियम है। राजा हमेशा बदलता रहता है। एक की तूती हमेशा नहीं बोलती है। मरण को स्वीकार करना ही पड़ता है, अतः राजभोग प्राप्त करके गर्व नहीं करना चाहिए, अत्याचार नहीं करना

चाहिए। यह बात सर्वमान्य है कि एक दिन सब राज- पाठ छोड़कर यहाँ से प्रस्थान करना ही होगा।

कबीर साहब मृत्यु के सम्मुख राजा, रंक और फकीर में कुछ भेदभाव नहीं मानते हैं। उनके अनुसार सभी को एक दिन मरना होगा।

कहा हमार गढ़ि दृढ़ बांधों, निसिवासर हहियो होशियार
ये कलि गुरु बड़े परपंची, डोरि ठगोरी सब जगमार।

कबीर चाहते थे कि सभी व्यक्ति सत्य का साक्षात्कार अपनी आँखों से करें। धर्म के नाम पर मनुष्य और मनुष्य के बीच गहरी खाई खोदने वालों से कबीर साहब को सख्त नफरत होती थी। उन्होंने ऐसे तत्त्वों को बड़ी निर्भयता से अस्वीकार कर दिया था।

ऐसा लोग न देखा भाई, भुला फिरै लिए गुफलाई।
महादेव को पंथ चलावै ऐसे बड़ै महंत कहावै।
हाट बजाए लावे तारी, कच्चे सिद्ध न माया प्यारी।

महात्मा कबीर हैरान होकर लोगों से कहा करते थे, भाई यह कैसा योग है। महादेव के नाम परपंथ चलाया जाता है। लोग बड़े- बड़े महंत बनते हैं। हाट बाजार समाधि लगाते हैं और मौका मिलते ही लोगों को लूटने का प्रयास करते हैं। ऐसे पाखंडी लोगों का वे पर्दाफाश करते हैं।

भये निखत लोभ मन ढाना, सोना पहिरि लजावे बाना।
चोरा- चोरी कींह बटोरा, गाँव पाय जस चलै चकोरा।

लोगों को गलत बातें ठीक लगती थी और अच्छी बातें विष। सत्य की आवाज उठाने का साहस किसी के पास न रह गया था।

नीम कीट जस नीम प्यारा
विष को अमृत कहत गंवारा।

वे कहते हैं, सत्य से बढ़कर कोई दूसरा तप नहीं है, और झूठ से बढ़कर कोई पाप नहीं है। जिनका हृदय शुद्ध है, वहाँ ईश का निवास है।

सत बराबर तप नहीं, झूठ बराबर नहीं पाप,
ताके हृदय साँच हैं, जाके हृदय आप।

राजाओं की गलत और दोषपूर्ण नीति के कारण देश जर्जर हो गया और प्रजा असह्य कष्ट उठाने को बेबश थी। राज नेता धर्म की आड़ में अत्याचार करते थे। कबीर की दृष्टि में तत्कालीन शासक यमराज से कम नहीं थे।

राजा देश बड़ौ परपंची, रैयत रहत उजारी,
इतते उत, उतते इत रहु, यम की सौढ़ सवारी,
घर के खसम बधिक वे राजा,
परजा क्या छोंकौ, विचारा।

कबीर के समय में ही शासको की नादानी के चलते, राजधानी को दिल्ली से दौलताबाद और पुनः दौलताबाद से दिल्ली बदलने के कारण अपार धन और जन को हानि हुई थी तथा प्रजा तबाह हो गई थी।

महात्मा कबीर साहब ने इस जर्जर स्थिति एवं विषम परिस्थिति से जनता को उबारने के लिए एक प्रकार जेहाद छेड़ दिया था। एक क्रांतिकारी नेता के रूप में कबीर समाज के स्तर पर अपनी आवाज को बुलंद करने लगे। काजी, मुल्लाओं एवं पुजारियों के साथ- साथ शासकों को धिक्कारते और अपना विरोध प्रकट किया, जिसके फलस्वरूप कबीर को राजद्रोह करने का आरोप लगाकर तरह- तरह से प्रताड़ित किया गया।

'एकै जनी जन संसार' कहकर कबीर ने मानव मात्र में एकता का संचार किया तथा एक ऐसी समझदारी पैदा करने की चेष्टा की, कि लोग अपने उत्स को पहचान कर वैमनष्य की पीड़ा से मुक्ति पा सकें और मनुष्य को मनुष्य के रूप में प्रेम कर सकें।

आधुनिक राजनीतिक परिस्थितियों को देखकर ऐसा लगता है कि आज कबीर साहब होते, तो उनका निर्भीक रूप से राजनैतिक दलों एवं व्यक्तियों से तगड़ा विरोध रहता, क्योंकि आज की परिस्थिति अपेक्षाकृत अधिक नाजुक है। आज कबीर साहब तो नहीं हैं, मगर उनका साहित्य अवश्य है, आज की राजनैतिक स्थिति में अपेक्षाकृत सुधार लाने के लिए कबीर साहित्य से बढ़कर और कोई दूसरा साधन नहीं है। कबीर साहित्य का आधार नीति और सत्य है और इसी आधार पर निर्मित राजसत्ता से राष्ट्र की प्रगति और जनता की खुशहाली संभव है। उनका साहित्य सांप्रदायिक सहिष्णुता के भाव से इतना परिपूर्ण है कि वह हमारे लिए आज भी पथ प्रदर्शन का आकाश दीप बना हुआ है। आज कबीर साहित्य को जन-जन तक प्रसार एवं प्रचार करने की आवश्यकता है, ताकि सभी लोग इसको जान सकें और स्वयं को शोषण से मुक्त एवं समाज में सहिष्णुता बना सकें।

तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति

कबीर मध्यकाल के क्रांतिपुरुष थे, जिन्होंने तत्कालीन समाज में हलचल पैदा कर दी थी। जर्जर हो चले समाज में कबीर का कार्य एक ऐसे चतुर एवं कुशल सर्जन का काम था, जिसके सामने समाज के हृदय के आपरेशन का प्रश्न था। उस आपरेशन के लिए कबीर साहब ने पूरी तैयार की थी।

उस समय पूरे देश में एक उद्धम लू चल रही थी, जिसका दाह भयंकर एवं व्यापक था। उस दाह से सारी जनता, अमीर, गरीब सब पीड़ित थे। कड़ी मेहनत करने के बावजूद साधारण जनता का जीवन असुरक्षित था और वे नृशंसता का शिकार बन रहे थे। विभिन्न प्रकार के करों ने सामाजिक एकता को विशुद्ध करके रख दिया था। महात्मा कबीर साहब भी इसी पीड़ित समाज के एक अंग थे। पीड़ा ने उन्हें सचेत किया था और दलितों की कराहों ने उन्हें बल दिया था। उनकी भर्त्सनाओं में समाज का क्षोभ था।

चलती चक्की देख के दिया कबीर रोय।
दो पाटन के बीच में साबूत बचा न कोय॥

जैसे चक्की के भीतर चना टूट जाता है, उसी तरह सांसारिक चक्र में घिसते- टूटते जनता के दुख- दर्द को देख कर कबीर को काफी दुख होता था। एक स्थान पर उन्होंने इस पर भीषण प्रहार किया है।

सो ब्राह्मण जो कहे ब्रहमगियान,
काजी से जाने रहमान
कहा कबीर कछु आन न कीजै,
राम नाम जपि लाहा लीजै।

उनके कथनानुरूप वैश्य जाति होने का तात्पर्य यह नहीं है कि इसका स्थान समाज में बहुत ऊँचा है। असल चरित्र ज्ञान है, विवेक है, जिससे मनुष्य की पहचान बनती है। आडंबरपूर्ण व्यवहार से छपा तिलक लगाकर लोगों को ठगने से मूर्ख बनाने से अपना अहित होता है।

2

कबीर के चिंतन

कबीरदास जी का आडंबर एवं बाह्याचार का खंडन केवल खंडन के लिए नहीं है। वे भक्ति को प्रतिष्ठित करना चाहते थे। **हजारी प्रसाद द्विवेदी** के शब्दों में, ''चाहे मुसलमान (इस्लाम) के बाह्याचार का खंडन हो या हिंदू मत के उन्होंने अपने पूर्ववर्ती योगियों की भांति सहज खंडन के लिए खंडन नहीं किया, उनका केंद्रीय विचार भक्ति था, वे भक्ति को प्रधान मानते थे, उसके रहने पर बाह्याचार का होना न होना गौण है। ऐसा जरूर है कि वे भक्ति की प्राप्ति के बाद बाह्याचारों का स्वयं नष्ट हो जाना जैसी बात पर विश्वास करते हैं। उनके मत से भक्ति और बाह्याचार का संबंध सूर्य और अंधकार का है।

कबीरदास कहते हैं कि हिंदू और मुसलमान दोनों ही अपने-अपने धर्मों के पाखंडों में लीन है, मर्म और तत्त्व की बात जानने का प्रयत्न ही नहीं करते। हिंदू को राम और मुसलमान को रहमान प्यारा है। लेकिन दोनों यह नहीं समझते कि राम और रहीम में कोई अंदर नहीं है। राम और रहमान के भेद को लेकर ही दोनों आपस में लड़ मरते थे और यह सब भ्रम में भूले हुए हैं। अंत में उनको पछताना होगा, मैंने ऐसे बहुत से लोगों को देखा है, जो नियम और धर्म के कट्टर हैं। सुबह स्नान कर मूर्ति पूजा करते हैं और अपनी आत्मा की आवाज (आत्म ज्ञान) को नहीं समझते हैं और उनका ज्ञान थोथा है, जो घमण्ड में डूबे हैं। पीपल, पत्थर एवं तीरथ, व्रत, माला, छापा, तिलक में ही सब भूल बैठे हैं, जो माया और अभिमान वंश में घर-घर में मंत्र देते फिरते हैं। ऐसे गुरु और शिष्य अंतकाल में

बहुत पछताते हैं। आडंबर से भरपूर लोग अपने आपको समझदार बताते हैं, लेकिन कबीर मानते हैं कि इनमें किसी में भी प्रभु की लगन नहीं है और न ही प्रभु के लिए दीवानापन।

कबीरदास ने अपने एक और सबद में मुसलमानों पर प्रहार करते हुए कहते हैं कि, "ऐ मियाँ, तुम्हें अल्लाह को बुलाना नहीं आता, कबीर तो प्रभु के समर्पित होकर उसके बंद (भक्त) हो गए हैं। आपको जो पथ अच्छा लगे उसका अनुसरण करो। ईश्वर हिंदू और मुसलमान दोनों का ही स्वामी है। वह अहंकारियों का स्वामी नहीं हो सकता। कबीर मुसलमानों को निशाना बनाते हुए कहते हैं कि तेरे मुरशिद पीर कहाँ से आए हैं और फिर तू ही कहीं से आया है? रोजा, नमाज, कलमा, पढ़ने से तुम्हें स्वर्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती। स्वर्ग की प्राप्ति तो उन्हीं को संभव है, जो काबे और हृदय के अंतर्गत एक ही खुदा (ईश्वर) को देखता है। जरा अपने ऊपर कृपा दृष्टि डाल और अपने स्वामी से साक्षात्कार कर, भौतिक वासनाओं से उपराम मत हो। अपने अहं पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् भगवत्स्वरूप हो जाएगा, तभी तुझे स्वर्ग प्राप्त हो सकेगा, अर्थात् जब तुम में और साईं में कोई भेद नहीं रहेगा, क्योंकि सागर में समग्र ही समाया हुआ है, जिस प्रकार एक ही मिट्टी (मृतिका) से अनेक प्रकार के पात्र निर्मित होते हैं, किंतु भला तुझे स्वर्ग कैसे अच्छा लगेगा, क्योंकि तुझे तो नरक ही अच्छा लगने लगा है।" कबीर ने इस पद मे इस्लाम में प्रचलित उपासना पद्धति को सत्य-प्राप्ति के मार्ग में बाधक माना है। इस्लाम मत के इस सिद्धांत को कि बंदा खुदा नहीं हो सकता, असत्य और भ्रांत धारणा बताया है।

कबीर ने इस भक्ति या हृदय साधना को ही परम वरेण्य माना है। इसके चलते कबीर मानवतावादी नहीं, सर्वात्मवादी हो उठते हैं। भक्ति धर्म की लोक हृदय से सयुक्त कर देती है। इसलिए कबीर शोषण, अत्याचार और पीड़ा के प्रत्येक क्षेत्र में अपना विरोधी स्वर मुखर करते हैं। कबीर की करुणा उन मूक पशुओं के प्रति भी प्रकट होती है, जिनका मांसाहार किया जाता है। मांसाहारी मुसलमानों और शाक्तों दोनों की भर्त्सना कबीर ने की है।

कबीर के लिए सदाचार और साधना ही श्रेष्ठ है। कबीर को अपने सदाचार और भगवत्प्रेम पर स्वाभिमान था। इसलिए वह उच्च कुलोद्भव पंडितों से तर्क करते समय यह बता देते हैं कि तुम्हें मेरी बात पर विश्वास न हो, तो नारद और व्यास का प्रमाण देखो, शुकदेव से जाकर पूछ लो। कबीर ने स्पष्ट कहा-''पंडितो, तुम दुर्बुद्धि से ग्रस्त हो गए हो, जो राम नहीं कहते। वेद-पुराण पढ़कर और उन

पर आचरण न करके तुम बंदन का भार ढोने वाले गधे बन गए हो। वेद पढ़ने का फल तो यह होना चाहिए कि व्यक्ति सबमें राम को देखे, जन्म मरण के बंधन से छूट जाए, सकल काम हो जाए। तुम यज्ञ में पशुओं की हिंसा करते हो और उसे धर्म कहते हो। यदि यह धर्म है तो अधर्म क्या है? तुम अपने को मुनिजन समझ बैठे हो, अगर तुम मुनिजन हो तो, 'कसाई' किसे कहा जाए?''

पांडे कौन कुमति तोहि लागी।
तू राम न जपहिं अभागी
वेद-पुराण पढ़त अस पांडे, खर चंदन जैसे भारा।
राम नाम तत समझत नाहीं, अंत पड़ै मुखि छारा।
वेद पढ़्या का यहु फल पांडे, सब घर देखें रामा।
जन्म-मरन थै तो तूं छूटै सुफल होहि सब कामा।।
जीव बधत अरू धरम कहत हौ, अधरम कहौ है भाई।
आपन तौ मुनिज हवै बैठे का सनि कहौ कसाई।।
नारद कहै व्यास यो भाषै, सुखदेव पूछौ जाई।।

कबीर ने हिंदू धर्माधिकारियों की तरह इस्लामी धर्माधिकारियों, मुल्लाओं, काजियों को भी आलोच्य बनाया है। उन्होंने मुल्ला से कहा, "तुम तो खुदा को हाजिर-नाजिर (सर्वत्र उपस्थित और सर्वदर्शी) कहते हो फिर कंकड़-पत्थर की मस्जिद बनाकर इस पर चढ़कर बांग क्यो देते हो, क्या खुदा बहरा हो गया है?" कबीर ने मुल्ला को भी अपनी साधना में दीक्षित होने का निमंत्रण दिया-मुल्ला तू ऐसी नमाज पढ़। एक मस्जिद है, जिसमें दस दरवाजे हैं। मन को मक्का बना, देह को काबा, वह जो जीभ बोल रही है, उसी को इमाम (गुरु) बना। तमोगुण को मार दे। भ्रम को दस्तरखान (भोजन जिस वस्त्र पर रखा जाता है) बना। पांचों इंद्रियों का भक्षण करके संतोष धारण कर।"

कहु रे मुल्ला बांग निवाजा, एक मसीति दसौ दरवाजा।।
मनु करि मका बिला करि देहीं, बोलन, हाऊ परम गुरु रही।।
बिसमिल तामसु भरमु कंदुरी, भखि ले पंचौ होई सबूरी।।

कबीर ने वर्तमान समाज में विद्यमान धर्म व्यवस्था और पाखंड का विरोध करते हुए कहा है कि ब्राह्मण किसी प्रकार का कार्य नहीं करता, सभी चोरियां ब्राह्मण ही करता है, सभी वेदों की रचना उसी ने की है। ब्रह्म का पंथ उसने ही चलाया है। उसने ही गोपाल कृष्ण की रचना की है, उसने ही स्वयंभू बनकर पंथ का संचालन किया है। उसने ही भूत-प्रेत की कल्पना की है, उसने ही जैन

विचारों की स्थापना की है, उसने ही झुककर नमाज पढ़ी है, वह किसी का नियंत्रण नहीं मानता लेकिन कबीर झूठे कसम का विश्वास नहीं करता। इसलिए कबीर सत्य है और सत्य का वक्ता है।

बड़ सो पापी अहि गुमानी। पाखंड रूप छले, उन नर-नारी।।
बाबन रूप छलेउ बलिराजा। ब्राह्मण कीन्ह कौन को काजा।।
ब्राह्मण ही सब कीन्हा चोरी। ब्राह्मण ही की लागल खोरी।।
ब्राह्मण किन्हों वेद पुराना। कैसे हू के मोहिं मानुष जाना।।
एक से ब्रह्म में पंथ चलाया। एक से हंसि गोपालहि गाया।।
एक से पूजा जैन विचारा एक से निहुरी नमाज गुजारा।
कोई काम के छोटा न माना। झूठा खसम कबीर नगजाना।।
तन-मन भजि रहु मोरे भकता। सत्य कबीर सत्य है वक्ता।।

कबीर विरोध भाव भी अकाट्य प्रमाणों द्वारा प्रस्तुत करते हैं। इसी प्रकार कबीर ने मुस्लिम धर्म व्यवस्थापकों का भी स्थान-स्थान पर विरोध किया है। दरवेश को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा है कि दर की बात बताओं? बादशाह का वेश क्या है? कहाँ गति कहाँ ठहराव है। ऐ मुसलमान, मैं तुमसे पूछता हूँ कि लाल, पीले का भेद क्या है? जिस सूरत को तुम सलाम करते हो? काजी तुम्हारा काम क्या है? तुम घर-घर जबह कराते हो। किसके कहने से छुरी चलाते हो? पीर कहे जाने के बावजूद तुम पीड़ा नहीं जानते। ऐ सैयद, तुम दिन में रोजा रहते हो और रात में गाय काटते हो। यह कत्ल और वह बंदगी क्या खुदा को खुश कर सकते हैं।

इसी सिलसिले में जुड़ा एक लंबा क्रम है, जहाँ उन्होंने ब्रह्मा और काशीवासी शिव की भी मृत्यु की बात की है। मथुरा के बाल कृष्ण को उन्होंने मर्त्य बतलाया है। दशों अवतारों को कबीर ने मरणशील ही कहा है। जिन नाथों और सिद्धों से कबीर को जोड़ा जाता है उस मत्स्येन्द्र और गोरख को भी उन्होंने मर्त्य बताकर धार्मिक अंध-विश्वासों को अस्वीकार किया है-

मरिगे ब्रह्म काशी के बासी, शिव सहित मुये अविनासी।।
मथुरा मरिगे कृष्ण गुवारा। मरि-मरि गये दसौ अवतारा।
मरि-मरि गये भक्ति जिन्हि ठानी, सगुन माहिं निर्गुन हिन्ह आनी।
नाथ मुछन्दर बांचे नहीं, गोरख दत्ता व्यास।
कहहि कबीर पुकार के, सत पर काल के फांस।।

धर्मगत जड़ता और उसी पर आधारित वर्ण-व्यवस्था को इन्कार करने के लिए कबीर ने स्पष्ट आक्रमण शैली का प्रयोग किया है। अवतार विश्वासों को कबीर ने बड़ी ढिठाई के साथ इन्कार कर दिया है। उनका कहना था कि उस साहब के अवतार नहीं होते। वह न दशरथ के अंश से पैदा हुआ है और न यशोदा की गोद में बैठा है। उसने बलि के साथ कोई छल नहीं किया, परशुराम के रूप में क्षत्रियों का संहार भी नहीं किया, उसने न गोवर्धन धारण किया, न ग्वालों के साथ बैठा। वह न तो शालिग्राम बनता है न मच्छ-कच्छ बनकर जल में डोलता है। वस्तुतः जो उत्पन्न होता है वह मृत्यु को भी प्राप्त होता है—वह ईश्वर नहीं कोई दूसरा होगा। कबीर ने इन सभी विश्वासों को, अकाट्य प्रमाणों के आधार पर खारिज करते हुए अपने अनुभव सत्य के आधार पर यह प्रतिपादित किया कि अल्लाह, राम, करीम, केशव, हरि, हजरत इत्यादि नामों में बँटा प्रभु वस्तुतः एक ही है। कहने-सुनने के लिए उन्हें दो हिस्सों में बाँट दिया गया है—नमाज और पूजा, महादेव और मुहम्मद साहब, ब्रह्म और आदम, हिंदू और तुर्क एक ही जमीन पर रहते हैं। इसीलिए कबीर ने सभी धर्मों के मूल मंतव्य को समझते हुए हिंदू-मुस्लिम को प्रेम से रहने का संदेश देते हुए प्रेम को ही श्रेष्ठ घोषित कर दिया-

पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढ़ाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय।।

कबीर इसी प्रेम के द्वारा मानव एकता का संदेश देना चाहते थे और उनका कहना था कि प्रेम को तभी पैदा किया जा सकता है, जबकि मनुष्य अपने को अहं भाव से मुक्त कर ले। कबीर ने ठीक से अनुभव किया था कि हिंदू और तुर्क में अभेद है, क्योंकि भेद होता तो इनकी जन्म-विधि में अंतर होता। जिस मार्ग से हिंदू आया है, उसी मार्ग से मुसलमान भी। जन्म के समय न तो कोई (शिखा और यज्ञोपवीत के साथ) ब्राह्मण बन कर आता है और न ही कोई (खतना-सहित) मुसलमान बनकर। व्रत, उपवास, तीर्थ, पूजा, नमाज चमत्कार, झोली, बटुआ, घघारी, सिर-मुण्डन, जटा-धारण, भस्म-लेप, पत्थर-पूजा, मूर्तिपूजा, अजान, माला, छापा तिलक एवं गंगा स्नान आदि समस्त लोक रूढ़ियों के विरुद्ध कबीर की वाणी बुलंद हुई है। गंगा-जमुना जैसे तीर्थ स्थानों के प्रति उनका अपना चिंतन है। कबीर का विश्वास है कि जब तक चित्त की शुद्धि नहीं होगी, हृदय निर्मल नहीं होगा, तब तक मनुष्य के समस्त कार्य-कलाप निरर्थक साबित होंगे योग के आडंबरों से कबीर को परहेज है। नोचकर, केशोच्छेदन

करना, बाल मुड़ाना, मौन व्रत लेना, जटा धारण करना अथवा पांडित्य, गुणज्ञ, दानशील और वीरदर्प के प्रदर्शन करना, अहंकारवादिता के परिचायक हैं। इन अहंकार धर्मी सूत्रों से अपनी श्रेष्ठता साबित करने वाला प्राणी मानवता की कोटि का हकदान नहीं बन सकता। ऐसे अहंकारशील लोग सत्य-पथ से डिगते रहते हैं। हरि-स्मरण (अहंकार-शून्यता) से रहित ये समस्त जन जिस प्रकार प्रकट होते हैं, उसी प्रकार नष्ट भी हो जाते हैं। कबीर समदर्शी थे। उन्हें न तो किसी से दोस्ती थी और न ही किसी से बैर। उनके लिए न तो मुल्ला प्यारे थे और न ही पंडित शत्रु थे। भ्रांत-पथिक इन दोनों ही को सन्मार्ग पर ले जाने का प्रयास कबीर द्वारा किया जा रहा था।

कबीर कहते है, "कौन-सा स्थान पवित्र है, जहाँ बैठकर मैं भोजन ग्रहण करूँ। माता का गर्भी भी अपवित्र है, पिता का संयोग भी अपवित्र है और स्वयं शिशु भी अपवित्र है। भोजन बनाने के सभी साधन भी अपवित्र हैं, अग्नि और पानी भी, जिस स्थान पर बैठकर भोजन बनाते हो, वह भी अपवित्र है। अपवित्र कलछी से अपवित्र भोजन परोसकर अपवित्र स्थान पर खाया जाता है। जिस गोबर से लीपकर चौका पवित्र किया जाता है, वह स्वयं अपवित्र होता है।''

कबीरदास जी द्वारा लगभग एक दर्जन से भी अधिक पद लिखे गए हैं, जिनमें पंडित या पांडे को संबोधित करते हुए उनके कर्मकांड पर सीधा प्रहार किया गया है। कबीर ने समाज में बैठे आडंबरी साधुओं पर कड़ा प्रहार किया है, वे कहते हैं–माला पहनने और फेरने से कुछ नहीं होने वाला है। अपने भीतर के अर्थात् मन का माला फेर कर उसको शुद्ध करने से लाभ है–

''माला पहिरै, मनमुषी, ताथै, कछू न होई।
मन माला कौ फेरतां, जग उजियारा सोई॥

इसी प्रकार कबीर ने अपनी साखियो में ऐसे पाखंडियों को अनेक जगह फटकारा है। माला फेरना, ललाट पर तिलक लगाना और लंबी जटा बढ़ा लेना ये बाहरी आडंबर दिखाते हो और अंदर कपट की कटारी रखे हुए हो–

माला फेरी तिलक लगाया।
लंबी जटा बढ़ाता है।
अंतर तेरे कुकर कटारी।
यों नहिं साहब मिलता है॥

कबीर वैष्णवों को फटकारते हुए कहते हैं, "रे साधु! वैष्णव मत में दीक्षित होने मात्र से क्या हुआ? तुम्हारे अंदर तो सच्चा ज्ञान नहीं जाग सका। तुम छापा,

तिलक लगाते रहे और इस प्रकार अनेक लोगों को ठगते रहे या अनेक जन्मों और लोकों में विषय की ज्वाला में ही जलते रहे।"

बैसनो भया तो का भया, बूझा नहिं विवेक।
छापा तिलक बनाई करि, ढगध्या लोक अनेक।।

कबीरदास जी ने अपनी रचना में एक जगह काजी और मुल्लाओं की घोर निंदा की है—जब काजी और मौलवी ने जीव हत्या के लिए अपने हाथ में छुरी पकड़ी उसी समय से वे भ्रमित होकर धर्म के मार्ग से भटक गए हैं और दुनिया के साथ चलने लगे हैं। उसी समय उन्होंने अपने धर्म को भुला दिया है।

काजी मुल्ला भ्रमियाँ, ल्या दूनी कै साथि।
दिल थै दीन विसरिया, करद लई जब हाथि।।

कबीर साहब आडंबर के सख्त विरोधी थे। वे मुसलमानों के नमाज पढ़ने की पद्धति के भी खिलाफ थे। वे कहते, क्या खुदा की प्रार्थना चिल्ला कर करने से खुदा प्रसन्न होगा।

जब खुदा, ईश्वर सर्वत्र है, तो उसके लिए चिल्ला-चिल्लाकर प्रार्थना करने की क्या जरूरत है। वे कहते हैं-

न जाने साहब कैसा है।
मुल्ला होकर बांग जे देवे।
क्या तेरो साहब बहरा है।
कीड़ी के पग नेवर बाजे।
सो भी साहब सुनता है।।

कबीर साहब ने आडंबर के विरोध में मानों कमर कस ली हो। वे अनुभूतिमार्गी थे। आडंबर तंत्र-मंत्र से मुक्त समाज के सहज साधना वृत्ति के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने कुल, पांडित्य, वेद-ज्ञान आदि समस्त तात्कालिक वर्गों पर कड़ा प्रहार किया है। उन्हीं के शब्दों में-

पंडित भूले यदि मुनि वेदा, आप न पावै नाना भेदा।
सन्ध्या तरपन तः पट करमा, लागि रहै, इनके आसरमा।।
अतिगुण गरब करै अधिकाई, अधिकै गरिण न होई भलाई।
अंकुर बीज नसाइगा तब मिलै दे ही धान।।

कबीर कहते हैं पांडे लोग वेदों को पढ़ने और उन पर विचार करने में भी भ्रमित हो गए हैं। अपने बाह्याचार खंडन की कड़ी में उन्होंने एक ज गह माला जपने की निंदा की है।

जो व्यक्ति केवल बाह्याडम्बर के लिए हाथ से माला जपता रहता है, किंतु उसके हृदय में वासनाओं का बवंडर चलता रहता है, उसकी दशा उस व्यक्ति के समान है, जो पाले में पैर रखता है और पैर गलने लगता है और जब वहाँ से भागने की चेष्टा करता है तब उसके चारों ओर काँटे चुभने लगते हैं। ऐसा व्यक्ति न तो ठंडक का सुख पा सकता है और न सुखी जमीन की सुविधा। यहाँ संकेत इस बात का है कि ऐसा व्यक्ति दीन, दुनिया दोनों से जाता है। उससे भला तो वह है, जो दुनियादारी में लगा है, किंतु बाह्याडंबर नहीं करता है। लोग उसे संसारी व्यक्ति समझते हैं। किंतु जो भगवत प्रेम का आडंबर करता है, उसको प्रभु का प्रेम नहीं मिल सकता है। वह प्रभु से वंचित रहता ही है। हृदय में निहित वासनाओं के कारण वह समाज के सुखों को भी नहीं प्राप्त कर सकता है।

इसी प्रकार माथे पर तिलक लगाने, मूड मुडाने वाले को भी कबीर कड़ी फटकार देते हैं। ये सारे बाह्याचार कबीर साहब के लिए व्यर्थ हैं। ऐसे कर्म विधान को नहीं मानते, जिनके मूल में कोई तत्त्व नहीं है। कबीर के लिए व्यर्थ है। जिन नाथ योगियों से उनका संबंध जोड़ा जाता है, उसके बाह्याचार का भी कबीर साहब ने विरोध किया है। वे अच्छी तरह जानते थे कि लोग शरीर का योग साधते हैं। मन को बिरले ही साधते हैं। कबीर साहब के शब्दों में देखा जा सकता है–

तन कौ जोगी सब करै, मन को बिरला कोई।
सब सिधी सहजै पाइए, जे मन योगी होई॥

कबीर साहब कहते हैं कि पवित्र और शुद्ध वे ही लोग हैं, जिन्होंने हरि की भक्ति करके अपने मन के विकारों को दूर कर लिया है। वे मन की पवित्रता पर बल देते हैं क्योंकि मन की पवित्रता भी एक आध्यात्मिक सत्य है। अहंकार में पड़कर मनुष्य सत्य से विमुख है। कबीर साहब पीर, काजी, मुल्ला आदि सभी को भ्रमित कहते हैं। मन को स्थिर रखने से ही ईश्वर को प्राप्त करने का आनंदाभिराम मिलता है।

कबीर साहब का जीवन अंध–विश्वासों का विरोध करने में ही बीता था। अपनी मृत्यु में भी उन्होंने इस बात का परिचय दिया है, काशी मोक्ष की नगरी मानी जाती है। मुक्ति की कामना से लोग काशीवास करके अपना शरीर त्यागते हैं। पर कबीर साहब इस अंधविश्वास का विरोध कर अपने जीवन के अंतिम समय बिताने और शरीर त्यागने हेतु मगहर चले आए। काशी को छोड़कर। कबीर साहब अपनी भक्ति के कारण ही अपने आप को मुक्ति का अधिकारी मानते थे। उन्होंने कहा भी है–

जो काशी तन तजै, कबीरा, तौ रामहिं कहां निहोरा।

ऐसे अंध विश्वासों का खंडन वे कई जगह करते हैं। कबीरदास ने अंध-विश्वासों के प्रति अपनी चेतना का प्रदर्शन करते हुए हिंदुओं के चौके के संबंध में जो बात कही है, वह अत्यंत ही सोचने की चीज है। बाह्याचार से ग्रस्त हिंदुओं ने अपने चौके तक को नहीं छोड़ा-

एकै पवन एक ही पाणी, करी रसोई न्यारी जानी।
माटी सूँ माटी ले पोती, लागी कह्यो कहाँ थे छोटी।।

इस प्रकार की भर्त्सना कबीर साहब ने हिंदुओं के चौके के संबंध में की है। वे कहते हैं कि अगर पूजा की चौकी देनी है तो वह सच्चे दिल से की जानी चाहिए।

साँच शील का चौका दीजै, भाव भगत की सेवा की है।

कबीर साहब ने हिंदू और मुसलमान दोनों को उनकी धार्मिक प्रतिष्ठा के लिए कड़ी फटकार लगाई है।

हिंदू कहै मोहिं राम पियारा तुरक कहै रहिमाना।
कबीरा लड़ि-लड़ि दोउ, मुए, मरम न काहू जाना।।

कबीर साहब समाज में व्याप्त छुआछूत को बर्दाश्त नहीं करते हैं। वे ब्राह्मण वाद से भली-भांति परिचित थे। उन्हें अच्छी तरह अनुभव था कि इसी ब्राह्मणवाद के कारण समाज में छुआछूत का दृश्य देखने को मिलता है। इसी कारण उनको भी फटकारा है और एक जगह अपनी रचना में वे कहते हैं-

बाभन के घर वाभन जाया और मारण दवै क्यों नहिं जाया।।

मुसलमानों को भी वे ललकारते हुए कहते हैं-

जो तुं तुरक, तुरकिनी जाया, सो आन बाट होई कहिं न आया।

कबीरदास ने समाज में व्याप्त हिंदुओं और मुसलमानों के बीच जाति-पांति, छुआछूत, खान-पान आदि के व्यवहारों, मुसलमानों के चाचा की लड़की ब्याहने इत्यादि विषयों के लिए दोनों वर्गों को जी भर कर लताड़ा है। इन सब अंध-विश्वासों पर उन्होंने कितना सजीव चित्रण किया है, यहां देखा जा सकता है-

महैं की कीजै पांडे छोति विचारा,
छोतिहि से अपना संसारा।
हमारे कैसे लोहू, तुम्हारे कैसे दूध,
तुम्ह कैसे ब्राह्मण पांडे हम कैसे सूद।

छोटि-छोटि करता तुम्हीं जाए,
तां ग्रमवास काहे को जाए।।
जनमत छोटि मरत की छोटि,
कहै कबीर हरि की निर्मल जोती।

कबीर साहब ने अपने समय में विभिन्न सांप्रदायिक संघर्षों और कलहों का जिक्र करते हुए कहा है कि भक्ति का ज्ञान सांप्रदायिक संघर्षों से नहीं प्राप्त किया जा सकता है। वे हैरान होकर लोगों से कहा करते थे कि भाई यह भी अजब योग है कि महादेव के नाम पर पंथ चलाए जाते हैं, जिसमें लोग बड़े-बड़े महंथ बनते हैं। हाट बाजार में समाज लगाते हैं और मौका पाते ही बंदूक उठा लेते हैं-

ऐसा लोग न देखा भाई, भूला फिरै लिए गफिलाई।
महादेव कौ पंथ चलावै, ऐसौ बड़ो महंथ कहावै।
हाट बजारै लावै तारी, कच्चे सिद्ध न माया त्यारी।
कब दस्ते मावासी तोरी, कब सुख कलहुब देव तोवची जोरी।
नारद कब बंदूक चलाया, व्यास देव क पंथ व जाया।।

कबीर साहित्य में जहाँ दर्शन, अध्यात्म, ज्ञान, वैराग्य की गूढ़ता मिलती है, वहीं उनके साहित्य में समाज सुधार का शंखनाद भी है। वह दार्शनिक होने के साथ-साथ, समाज सुधारक भी थे। समाज सुधार अर्थात् जन जीवन का उत्थान कबीर के जीवन की साधना थी। उन्होंने भक्ति के आडम्बरों पर चोट की, अंधविश्वासों, रूढ़ प्रथाओं, परम्पराओं, पर भी निर्भीकता से लिखा। भक्ति में सुधार, समाज की कुप्रथाओं में सुधार, जीवन के हर क्षेत्र में सुधार, कबीर के जीवन की साधना रही है। कबीर कवि होने के साथ ही साधक थे, दर्शनिक थे, तत्त्वान्वेषी थे, भक्त और ज्ञानी थे। वस्तुतः कबीर का जीवन उच्चतम मानवीय व्यक्तित्त्व की अभिव्यक्ति है।

प्रचलित धारणाओं के अनुसार, मस्तमौला संत कबीर रामानन्द जी के शिष्य थे। कबीर की जन्म तिथि में विभिन्न मतमतांतर हैं, पर विक्रमी सम्वत् के अनुसार पन्द्रवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध, सोलहवीं का प्रारम्भ व 1455-56 के आस-पास ही इनका जन्मकाल रहा। जन्मस्थान कोई काशी, कोई मगहर तथा कोई बलहरा गाँव आजमगढ़ के पास मानता है।

कबीर जब हुए, देश में उथल-पुथल का समय था। मुसलमानों का आगमन, उनका आक्रमण, राज्य स्थापन और यहीं बस जाना, देश के इतिहास

की बडी महत्त्वपूर्ण घटना थी। मुसलमानों का आक्रमण राजनीतिक वर्चस्व कायम करना ही नहीं बल्कि इस्लाम का प्रचार अधिक था। अलग सांस्कृतिक एवं सामाजिक इकाई के रूप में कट्टर विरोधी होकर रहना, हिन्दू समाज को अपने में आत्मसात् करने की भावना से सारा हिन्दू समाज आतंकित एवं भयभीत था। मूर्तियाँ व मंदिर खण्डित होते रहे। इस विषमतापूर्ण समय में हिन्दुओं के समक्ष, अपनी सांस्कृतिक आत्मरक्षा का प्रश्न था। ऐसे में पुनरुत्थान कार्य, साम्प्रदायिक एवं जातीय भावनाओं को सामने रखकर किया जाना सम्भव नहीं था। हिन्दुओं में भी विभिन्न मतमतांतर, पंथ, सम्प्रदाय बन चुके थे, जो हिन्दू समाज में अन्तर्विरोध दर्शाते थे। मानना होगा, ऐसी विपरीत स्थितियों के समय में जब हिन्दू संस्कृति, धर्म, जाति को झकझोर दिया गया था–कबीर की समन्वय साधना ने, समाज में पुनरुत्थान का कार्य किया। पुनरुत्थान भक्ति साधना से ही सम्भव था। कबीर का साहित्य इस बात का साक्षी है।

कबीर के पहले तथा समसामयिक युग में साधनाओं में सबसे प्रमुख भक्ति साधना ही है। भक्ति आन्दोलन ने भगवान की दृष्टि में सभी के समान होने के सिद्धान्त को फिर दोहराया। कबीर की भक्ति भावना तथ्य से जुड़ी है। भक्तिपथ में भक्ति के द्वारा प्राण स्पंदन देने वालों में कबीर भी प्रमुख हैं। अनेकानेक साधनाओं के अन्तर्विरोध के युग में कबीर जन्मे थे। कबीर के व्यक्तित्त्व को सभी अन्तर्विरोधों ने प्रभावित किया, इस पर कबीर ने समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाया। कबीर में परिस्थितिजन्य निर्णय की अभूतपूर्व क्षमता थी। वह आत्मचिंतन से प्राप्त निष्कर्षों को कसौटी पर कसने में कुशल थे। कबीर ने मानवतावादी तत्त्वग्राही व्यक्तित्त्व से अपने दृष्टिकोण में मजहबी, वर्गगत अहंकार तथा आचार संहिता की जड़कारा में उलझा देने वाले तत्त्वों को भुला त्याग दिया। कबीर नैतिकता से विकसित भगवत्प्रेम में मानव कल्याण समझते हैं। कबीर की दृष्टि में यही मानवता का मूल आधार है। कबीर जीवन का चरम लक्ष्य परम तत्त्व की प्राप्ति मानते हैं। इस तत्त्व को प्राप्त करने का प्रमुख साधन ज्ञान और प्रेम है। कबीर के अनुसार ज्ञान से मतलब शास्त्र ज्ञान के अहंकार से मुक्त व्यक्ति को सहज रूप से ज्ञान होता है। ऐसे ही प्रेम का सहज रूप ही कबीर को मान्य है। कबीन ने आध्यात्मिक, धार्मिक, दार्शनिक एवं साधना के स्तर पर समन्वय का संदेश दिया है। कबीर संत हैं–भक्त हैं। कबीर ने अपने साहित्य में, भक्ति, प्रेम व सदाचरण से भगवान को प्राप्त करने का संदेश दिया। वस्तुतः कबीर की व्यथा किसी वर्ग विशेष की व्यथा नहीं थी, वह व्यापक मानवता की व्यथा थी।

वर्तमान संदर्भों में उन्होंने आज की तरह प्रतिष्ठा दिलाने के लिए साधना नहीं की, क्योंकि कबीर के अनुसार साधना से ही मूलतः मानव व प्राणी मात्र का आध्यात्मिक कल्याण है।

कबीर के अनुसार पिंड और ब्रह्माण्ड से भी परे, निर्विशेष तत्त्व है, वही सबसे परे परम तत्त्व है, जिसका अनुभव होने पर भी वाणी में अवर्णनीय है। वह अलख है, उसे कहा नहीं जा सकता। पिंड और ब्रह्माण्ड से परे का जो तत्त्व है वही हरि है। उसका कोई रूप नहीं, वह घट -घट में समाया है। कबीर ने इस तत्त्व को कई नामों से व्यक्त किया है। अलख, निरंजन, निरर्भ, निजपद, अभैपद, सहज, उनमन इत्यादि। "गुन में निरगुन, निरगुन में गुन हैं बाट छाड़ क्यों जहिए। अजर अमर कथै सब कोई अलख न कथणां जाई।।" इसी चिंतन में कबीर कहते हैं–"जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है–बाहर भीतर पानी। फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यह तत कथौ गियानी।।" तथा–"पानी ही से हिम भया हिम है गया बिलाई।।"

प्रेम साध्य भी है–साधन भी। प्रेम स्वयं ही प्रेम का वरण करता है। अर्थात् केवल प्रेम के अनुग्रह से प्रेम प्राप्त होता है। प्रेम लौकिक, अलौकिक दोनों स्तर पर एक-सा रहता है। प्रेम वस्तुतः आत्मरति रूप है, अहेतुक होता है। आत्मबोध की सहज स्थिति आत्मरति है। कबीर ने आध्यात्मिक प्रेम को लौकिक माध्यम से व्यक्त किया–"कबीर यह घर प्रेम का खाला का घर नाहिं। सीस उतारे हाथि करि, सो पैसे घर मांहि।।" कबीर का सौन्दर्य ब्रह्म सविशेष ब्रह्म है, इससे उनके अन्तःकरण में भगवान का प्रेम जागा तो कबीर ने कहा, "संतो भाई आई ज्ञान की आंधी रे। भ्रम की टाटी सबै उडानी, माया रहे न बाँधी रे।।" कबीर के अनुसार लौकिक और आध्यात्मिक का भेद प्रेम की दिव्यता में बाधक नहीं है।

रहस्यवाद की तीन अवस्थाएँ होती हैं, अनुराग उदय, परिचय, मिलन। कबीर साहित्य में भावनात्मक तथा साधनात्मक दोनों तरह का रहस्यवाद मिलता है। कबीर में भावनात्मक रहस्यवाद की प्रथम अवस्था से ही साधनात्मक रहस्यवाद के भी दर्शन होते हैं। "पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान। कहिये कूँ सोभा नहीं–देख्या ही परमान।।" वह और भी आगे लिखते हैं–"सुरति समांणी निरति में, निरति रही निरधार। सुरति निरति परचा भया तब खुले स्वयं दुवार।।" और भी "जो काटो तौ डहडही, सींचौ तौ कुमिलाइ।।"

कबीर साहित्य में साखी कबीर का जीवनदर्शन है। साखी कबीर साहित्य का बहुत ही महत्त्वपूर्ण अंश है। साखियों में कबीर का व्यक्तित्त्व समग्र रूप से

व्यक्त हुआ है। "साखी आँखी ज्ञान की समुझि लेहु मनमाहिं। बिनु साखी संसार का झगडा छूटै नाहिं।।" कबीर साहित्य में गुरु का स्थान सर्वोपरि ईश्वर समकक्ष है। कबीर के अनुसार गुरु शिष्य को मनुष्य से देवता कर देता है। "गुरु गोविन्द दोउ खडे-काके लागूं पाय। बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो मिलाय।" सद्गुरु के बारे में कबीर लिखते हैं "ग्यान प्रकास्या गुरु मिल्या, सो जन बीसरि जाइ। जब गोविन्द कृपा करी, तब गुरू मिलिया आई।।" इसके विपरीत अज्ञानी गुरु के बारे में कबीर कहते हैं–"जाका गुरु भी अंधला, चेला खरा निरंध। अंधे अंधा ठेलिया, दून्यूं कूप पडंत।।" आज के संदर्भों में दार्शनिक कबीर की व्यक्त हुई कुछ-कुछ सटीक-सी लगती भावना "नां गुरु मिल्या न सिष भया, लालच खेल्या डाव। दुन्यूं बूडे धार में–चढ पाथर की नाव।"

जैसे सुमिरण को अंग, यानी मनन की अवस्था, विनती को अंग अर्थात् भगवान के समक्ष अपनी लघुता की अनुभूति तथा पति परमेश्वर के भाव की अभिव्यक्ति है। कबीर द्वारा इस तरह 'अंग' के माध्यम में पचासों अंगों के तहत ज्ञान की अभिव्यक्ति हुई है। कबीर पर वैदिक विचारधारा, वैष्णव विचारधारा का प्रभाव था, उन्होंने अपने साहित्य में एकात्मक अद्वैतवाद, ज्ञान तत्त्व, गुरु भक्ति, भगवद्भक्ति, अध्यात्म योग, प्रणवोपासना, जन्मान्तरवाद, भगवान के विविध वैष्णवी नाम, ब्रह्म स्वरूपों में श्रद्धा, भक्ति उपासना तथा प्रपत्ति, योग के भेद, माया तत्त्व आदि के माध्यम से काव्य रचना को संजोया। निर्भीक सुधारवादी संत कबीर ने, भक्ति ही क्या हर क्षेत्र में अंधविश्वासों पर चोट कर, रूढ़ परम्पराओं आडम्बरों से अलग हट, सामाजिक सुधार भरपूर किया। हिन्दू- मुसलमान दोनों के ही साम्प्रदायिक, रूढिग्रस्त विचारों की उन्होंने आलोचना की। अपनी सहज अभिव्यक्ति में कबीर ने लिखा–"कंकर पत्थर जोड़ के मस्जिद दी बनाय। ता पर मुल्ला बांग दे, बहरा हुआ खुदाय।।" इतना ही नहीं, इससे भी बढ़कर लिखा "दिन में रोजा रखत हो, रात हनत हो गाय। यह तो खून औ बंदगी, कैसे खुशी खुदाय।।" ऐसे ही हिन्दुओं के अंधविश्वासों और धर्म के क्षेत्र में आडम्बरों का कबीर ने खुला विरोध किया। "पाहन पूजे हरि मिले–तो मैं पूजूं पहार। ताते तो चाकी भली, पीस खाय संसार।।" कबीर का दृष्टिकोण सुधारवादी था। उन्होंने बताया "मूंड मुंडाए हरि मिले, सबही लेऊँ मुंडाए। बार-बार के मूंड ते भेड न बैकुंठ जाए।।" कबीर ने हिन्दुओं के जप-तप, तिलक, छापा, व्रत, भगवा वस्त्र, आदि की व्यर्थता बताते हुए लिखा-"क्या जप क्या तप संयमी, क्या व्रत क्या अस्नान। जब लगि मुक्ति न जानिए, भाव भक्ति भगवान।।" मरणोपरांत गंगा में

अस्थि विसर्जन पर कबीर ने लिखा–"जारि वारि कहि आवे देहा, मूआ पीछे प्रीति सनेहा। जीवित पित्रहि मारे डंडा, मूआ पित्र ले घालै गंगा।।" समाज में कई अस्वस्थ लोकाचारों पर कबीर ने प्रहार किए। वे कहते हैं–यदि मन में छल कपट की गर्द भरी है तो योग भी व्यर्थ है। "हिरदे कपट हरिसँ नहिं सांचो, कहा भयो जो अनहद नाच्यौ।।"

कबीर ने ब्रह्म को करुणामय माना है। ब्रह्म माया, और जीव के सम्बन्ध में कबीर के दार्शनिक विचारों का वर्णन है। कबीर निर्गुणोपासक थे। उन्होंने राम के गुणातीत, अगम्य, अगोचर, निरंजन ब्रह्म का वर्णन किया है। मानना होगा भक्ति आन्दोलन के सुधारवादी भक्त कवियों में कबीर का अपना अलग ही स्थान व नाम है। भगवा वस्त्र पहन कर जंगलों की खाक छानने के पक्ष में कबीर नहीं थे। उन्होंने धर्म एवं भक्ति में दिखावे को त्याग, तीर्थाटन, मूर्तिपूजा आदि को धर्म परिधि से बाहर रखा। कबीर कहते हैं, "काम-क्रोध, तृष्णा तजै, ताहि मिले भगवान।।" राम अर्थात् उनके ब्रह्म में अपने खुद के समर्पण की चरमसीमा देखने योग्य है। "लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल। लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।" कबीर के बारे में किसी ने यह सही लिखा प्रतीत होता है, "ज्ञान में कबीर परम हंस, कल्पना में योगी, और अनुभूति में प्रिय के प्रेम की भिखारिणी पतिव्रता नारी हो।" कबीर में अतिवाद कहीं भी नहीं। ब्रह्म परमसत्ता को कबीर ने सहजता से सर्वव्यापी बताते हुए कहा–"ना मैं गिरजा ना मैं मंदिर, ना काबे कैलास में। मौको कहाँ ढूंढे बंदे, मैं तो तेरे पास में।।"

कबीर का दृष्टिकोण सुधारवादी ही रहा। कबीर ने किसी धर्म विशेष एवं दर्शन की पताका ऊँची नहीं की। वस्तुतः उन्होंने तो अपने को मानवीय तत्त्वों से सम्बद्ध रखा। धर्म व सुधार के नाम पर कबीर ने जनता को उलझाया नहीं, उन्होंने तो खण्डन कर उलझनों से दूर रखा। जनमानस को अभेद की ओर प्रेरित कर भ्रम-माया से दूर रहने की प्रेरणा दी, इसीलिए कबीर मानवतावादी सुधारक माने जाते हैं। कबीर ने ईश्वर प्रेम, भक्ति व साधना में माया को बाधक माना। कबीर ने कहा माया आकर्षक व मनमोहक है। माया आचरण के कारण ही आत्मा अपने परमात्म रूप को नहीं पहचान पाती। माया ब्रह्म से मिलने नहीं देती। "कबीर माया पापणी, हरि सूं करे हराम। मुख कडया को कुमति, कहने न देई राम।।

पंद्रहवीं शताब्दी में संतकाल के प्रारंभ में सारा भारतीय वातावरण क्षुब्ध था। बहुत से पंडित जन इस क्षोभ का कारण खोजो में व्यस्त थे और अपने- अपने ढंग पर समाज और धर्म को संभालने का प्रयत्न कर रहे थे। इस अराजकता का

कारण इस्लाम जैसे एक सुसंगठित संप्रदाय का आगमन था। इसके बाद देश के उथल- पुथल वातावरण में महात्मा कबीर ने काफी संघर्ष किया और अपने कड़े विरोधों तथा उपदेशों से समाज को बदलने का पूरा प्रयास किया। सांप्रदयिक भेद- भाव को समाप्त करने और जनता के बीच खुशहाली लाने के लिए निमित्त संत- कबीर अपने समय के एक मजबूत स्तंभ साबित हुए। वे मूलतः आध्यात्मिक थे। इस कारण संसार और सांसारिकता के संबंध में उन्होंने अपने काल में जो कुछ कहा, उसमें भी आध्यात्मिक स्वर विशेष रूप से मुखर है।

इनके काजी मुल्ला पीर पैगम्बर रोजा पछिम निवाज।
इनके पूरब दिसा देव दिज पूजा ग्यारिसि गंगदिवाजा।
कहे कबीर दास फकीरा अपनी राह चलि भाई।
हिंदू तुरुक का करता एकै ता गति लखी न जाई।

कबीर- व्यवहार में भेद- भाव और भिन्नता रहने के कारण सांप्रदायिक कटुता बराबर बनी रही। कबीर दास इसी कटुता को मिटाकर, भाई चारे की भावना का प्रसार करना चाहते थे। उन्होंने जोरदार शब्दों में यह घोषणा की कि राम और रहीम में जरा भी अंतर नहीं है –

कबीर ने अल्लाह और राम दोनों को एक मानकर उनकी वंदना की है, जिससे यह सिद्ध होता है कि उन्होंने अध्यात्म के इस चरम शिखर की अनुभूति कर ली थी, जहाँ सभी भिन्नता, विरोध- अवरोध तथा समग्र द्वैत- अद्वैत में प्रतिष्ठित हो जाते हैं। प्रमुख बात यह है कि वे हिंदू- मुसलमान के जातीय और धार्मिक मतों के वैमनष्य को मिटाकर उन्हें उस मानवीय अद्वैत धरातल पर प्रतिष्ठित करने में मानवता और अध्यात्म के एक महान नेता के समान प्रयत्नशील हैं। उनका विश्वास था कि "सत्य के प्रचार से ही वैमनष्य की भावना मिटाई जा सकती है। इस समस्या के समाधान हेतु, कबीर ने जो रास्ता अपनाया था, वह वास्तव में लोक मंगलकारी और समयानुकूल था। अल्लाह और राम की इसी अद्वैत अभेद और अभिन्न भूमिका की अनुमति के माध्यम से उन्होंने हिदूं- मुसलमान दोनों को गलत कार्य पर चलने के लिए वर्जित किया और लगातार फटकार लगाई।

ना जाने तेरा साहब कैसा है,
मस्जिद भीतर मुल्ला पुकारे, क्या साहब तेरा बहिरा है,
पंडित होय के आसन मारे लंबी माला जपता है।
अंतर तेरे कपट कतरनी, सो भी साहब लखता है।

हिंदू- मुसलमान दोनों का विश्वास भगवान में है। कबीर ने इसी विश्वास के बल पर दोनों जातियों को एक करने का प्रयत्न किया, भाईचारे की भावना उत्पन्न करने की चेष्टा की।

सबद सरुपी जिव- पिव बुझों,
छोड़ो भय की ढेक।
कहे कबीर और नहिं दूज।
जुग- जुग हम तुम एक।

कबीर शब्द- साधना पर जोर दे रहे हैं। इनका कथन है, तुम श्रम तज कर शब्द साधना करो और अमृत रस का पान करो, हम तुम में कोई भेद नहीं हैं, हम दोनों इसी एक पिता की संतान हैं। इसी अर्थ में कबीर दास हिंदू और मुसलमान के स्वयं विधायक हैं।

बड़े कठोर तप, त्याग, बलिदान और संकल्प शक्ति को अपना कवच बनाकर भारत की जनता ने अपनी खोई हुई स्वतंत्रता तो प्राप्त कर ली, लेकिन इसके साथ ही सांप्रदायिकता की लहर ने इस आनंद बेला में विष घोल दिया। भारत का विभाजन हुआ। इस विभाजन के बाद असंख्य जानें गई, लाखों घर तबाह हुए और बूढ़े, बच्चे, जवान, हिंदू, मुस्लिम सब समाज विरोधी तत्त्वों के शिकार हुए। इन तमाम स्थितियों से निबटने के लिए मानवतावादी सुधार की आवश्यकता थी, यह काम अध्यात्म से ही संभव था। कबीर पंडितों का ढोंगपूर्ण रवैया देखकर उन्हें चेतावनी देते हुए कहते हैं –

पंडित होय के आसन मारे, लंबी माला जपता है,
अंतर तेरे कपट कतरनी, सो सो भी साहब लखता है,
ऊँचा निचा महल बनाया, गहरी नेव जमाता है,
कहत कबीर सुनो भाई साधो हरि जैसे को तैसा है।

कबीर शोषणकर्ता को रोषपूर्ण आगाह करते हैं कि भगवान के दरबार में न्याय होने पर उन्हें अपने किए का फल अवश्य भुगतना पड़ेगा। दूसरी ओर निरीह जनता को वे समझाते हुए कहते हैं –

कबीर नौवति आपणी, दिन दस लेहु बजाई,
ऐ पुर पारन, एक गली, बहुरि न देखें आई।

महात्मा कबीर कहते हैं कि यह जीवन कुछ ही दिनों के लिए मिला है, अतः इसका उपयोग सार्थक ढंग से खूब आनंदपूर्वक करना चाहिए।

जो करेंगे सो भरेंगे, तू क्यों भयो उदास,
कछु लेना न देना, मगन रहना,
कहे कबीर सुनो भाई साधो,
गुरु चरण में लपटे रहना।

"महात्मा कबीर साहब संतप्त जनता को समझाते हुए कहते हैं कि कर्तव्य निर्विकार रूप से करो, व्यर्थ के प्रपंच में मत पड़ो, सर्वदा अपने मन को गुरु में लगाए रहो।"

जीवित ही कछु कीजै,
हरि राम रसाइन पीजै।

महात्मा कबीर दास ने पीड़ित जनता के दुख- दर्द को दूर करने के लिए 'राम रसायन' का आविष्कार किया। कबीर साहब ने पहली बार जनता को उसकी विपलता में ही खुश रहने का संदेश दिया।

कबीर मध्यकाल के क्रांतिपुरुष थे। उन्होंने देश की अंदर और बाहर की परिस्थितियों पर एक ही साथ धावा बोलकर, समाज और भावलोक को जो प्रेरणा दी, उसे न तो इतिहास भुला सकता है और न ही साहित्य इतनी बलिष्ठ रुढ़ियों पर जिस साहस और शक्ति से कबीर ने प्रहार किया, यह देखते ही बनता है।

संतों पांडे निपुण कसाई,
बकरा मारि भैंसा पर धावै, दिल में दर्द न आई,
आतमराम पलक में दिन से, रुधिर की नदी बहाई।

कबीर ने समाज की दुर्बलता और अधोगति को बड़ी करुणा से देखकर, उसे ऊपर उठाने के मौलिक प्रयत्न किया। उन्होंने भय, भर्त्सना और भक्ति जैसे अस्त्रों का उपयोग राजनैतिक विभीषिकाओं और सामाजिक विषमताओं जैसे शत्रु को परास्त करने के लिए किया। कबीर साहब यह बात समझ चुके थे कि इन शत्रुओं के विनाश होने पर ही जनता का त्राण मिल सकता है। अतः उनका सारा विरोध असत्य, हिंसा और दुराग्रह से था। उनका उद्देश्य जीवन के प्रति आशा पैदा करना था।

कबीर का तू चित वे, तेरा च्यता होई,
अण च्यता हरि जो करै, जो तोहि च्यंत नहो।

महात्मा कबीर शोकग्रस्त जनता को सांत्वना देते हैं "तुम चिंता क्यों करते हो ? सारी चिंता छोड़कर प्रभु स्मरण करो।"

केवल सत्य विचारा, जिनका सदा अहार,
करे कबीर सुनो भई साधो, तरे सहित परिवार।

कबीर अनुसार जो सत्यवादी होता है, उसका तो भला होता ही है, साथ-साथ उसके सारे परिवार का भी भला होता है और वे लोग सुख पाते हैं। वह कहते हैं, सारे अनर्थों की जड़, असत्य और अन्याय है, इनका निर्मूल होने पर ही शुभ की कल्पना की जा सकती है। इसी अध्यात्म का सहारा लेकर कबीर ने हिंदू- मुस्लिम के भेद- भाव को मिटाने का प्रयत्न किया था, इसके साथ-साथ ही उन्होंने अपने नीतिपरक पदों के द्वारा जनता का मनोबल बढ़ाने का प्रयत्न किया था। आज के परिवेश में भी इन्हीं उपायों की आवश्यकता है।

सांप्रदायिक मतभेदों या दंगों का कारण अज्ञान या नासमझी है। इस नासमझी या अज्ञान को दूर करने के लिए कबीर दास द्वारा बताए गए उपायों का प्रयोग किया जाना आवश्यक है। कबीर की वाणी ही समस्त समस्याओं का निवारण करने में समर्थ है।

उन्होंने ऊँच-नीच, जाति-पाति का भेद मिटाकर सबको एक समान सामाजिक स्तर देने का कार्य किया। आज के संदर्भ में भी इसी चीज की जरूरत है।

गुप्त प्रगट है एकै दुधा, काको कहिए वामन- शुद्रा
झूठो गर्व भूलो मति कोई, हिंदू तुरुक झूठ कुल दोई॥

वर्तमान समस्याएँ चाहे सांप्रदायिक हों, चाहे वैयक्तिक, सबका समुचित समाधान नैतिक मूल्य प्रस्तुत करते हैं।

कबीर दर्शन में जाति- धर्म का कोई बंधन स्वीकार नहीं है। सारे अलगाववादी विधानों को तोड़कर वह एक शुद्ध मानव जाति का निर्माण करता है, इसलिए आज के संदर्भ में इसकी उपयोगिता बढ़ गई है।

जिन दिनों कबीर दास का आविर्भाव हुआ था, उन दिनों हिंदुओं में पौराणिक मत ही प्रबल था। देश में नाना प्रकार की साधनाएँ प्रचलित थीं। कोई वेद का दिवाना था, तो कोई उदासी और कई तो ऐसे थे, जो दीन बना फिर रहा था, तो कोई दान- पुण्य में लीन था। कई व्यक्ति ऐसे थे, जो मदिरा के सेवन ही में सब कुछ पाना चाहते थे तथा कुछ लोग तंत्र- मंत्र, औषधिदि की करामात को अपनाए हुए थे।

इक पठहि पाठ, इक भी उदास,
इक नगन निरन्तर रहै निवास,

इक जीग जुगुति तन खनि,
इक राम नाम संग रहे लीना।

कबीर ने अपने चतुर्दिक जो कुछ भी देखा- सुना और समझा, उसका प्रचार अपनी वाणी द्वारा जोरदार शब्दों में किया –

ऐसा जो जोग न देखा भाई, भुला फिरे लिए गफिलाई
महादेव को पंथ चलावे, ऐसा बड़ो महंत कहावै॥

कबीर दास अपने तत्कालीन समाज में प्रचलित विडम्बना देखकर चकित रह गए। समाज की इस दुहरी नीति पर उन्होंने फरमाया –

पंडित देखहु मन मुंह जानी।
कछु धै छूति कहां ते उपजी, तबहि छूति तुम मानी।

समाज में छुआछूत का प्रचार जोरों पर देखकर कबीर साहब ने उसका खंडन किया। उन्होंने पाखंडी पंडित को संबोधित करके कहा कि छुआछूत की बीमारी कहाँ से उपजी।

तुम कत ब्राह्मण हम कत सूद,
हम कत लौहू तुम कत दूध,
जो तुम बाभन बाभनि जाया,
आन घाट काहे नहि आया।

महात्मा कबीर साहब ब्राह्मण के अभिमान यह कहकर तोड़ते हैं कि अगर तुम उच्च जाति के खुद को मानते हो, तो तुम किसी दूसरे मार्ग से क्यों नहीं आए ? इस प्रकार कबीर ने समाज व्यवस्था पर नुकीले एवं मर्मभेदी अंदाज से प्रहार किया। समाज में व्याप्त आडंबर, कुरीति, व्याभिचार, झूठ और पाखंड देखकर वे उत्तेजित हो जाते और चाहते कि जन- साधारण को इस प्रकार के आडम्बर एवं विभेदों से मुक्ति मिले और उनके जीवन में सुख- आनंद का संचार हो।

महात्मा कबीर के पास आध्यात्मिक ज्ञान था और इसी ज्ञान के द्वारा वे लोगों को आगाह करते थे –

आया है सो जाएगा, राजा रंक फकीर।
एक सिंहासन चढ़ि चलें, एक बंधे जंजीर।

अपने कर्तव्य के अनुसार हर व्यक्ति को फल मिलना निश्चित है। हर प्राणी को यहाँ से जाना है। समाज व्याप्त कुरीतियों को दूर करने और जन-समुदाय में सुख- शान्ति लाने के लिए कबीर एक ही वस्तु को अचूक

औषधि मानते हैं, वह है अध्यात्म। वे चाहते हैं कि मानव इसका सेवन नियमित रूप से करे।

महात्मा कबीर दास के सुधार का प्रभाव जनता पर बड़ी तेजी से पड़ रहा था और वह वर्ण- व्यवस्था के तंत्र को तोड़ रहे थे, उतने ही तेजी से व्यवस्था के पक्षधरों ने उनका विरोध भी किया। संत के आस- पास, तरह- तरह के विरोधों और चुनौतियों की एक दुनिया खड़ी कर दी। उन्होंने सभी चुनौतियों का बड़ी ताकत के साथ मुकाबला किया। इसके साथ ही अपनी आवाज भी बुलंद करते रहे और विरोधियों को बड़ी फटकार लगाते रहे।

तू राम न जपहि अभागी,
वेद पुरान पढ़त अस पांडे,
खर चंदन जैसे भारा,
राम नाम तत समझत नाहीं,
अति पढ़े मुखि छारा॥

इसी प्रकार कबीर अपने नीति परक, मंगलकारी सुझावों के द्वारा जनता को आगाह करते रहे ओर चेतावनी देते रहे कि मेरी बात ध्यान से सुनो और उस पर अमल करो, इससे तुम्हारा कल्याण होगा।

घर- घर हम सबसों कही, सवद न सुने हमारा।
ते भव सागर डुबना, लख चौरासी धारा॥

कबीर साहब समाज में तुरंत परिवर्तन चाहते थे। आशानुकूल परिवर्तन नहीं होते देखकर वे व्यथित हो उठते थे। उन्हें दुख होता था कि उनकी आवाज पर, उनके सुझाव पर कोई ध्यान नहीं दे रहा है।

आधुनिक संदर्भ में भी यही बात कही जा सकती है। आज भी भारतीय समाज की वही स्थिति है, जो कबीर काल में थी। सामाजिक आडंबर, भेद- भाव, ऊँच- नीच की भावना आज भी समाज में व्याप्त है। व्यभिचार और भ्रष्टाचार का बाजार गर्म है। आए दिन समाचार पत्रों आग जगी, दहेज मौत, लूट, हत्या और आत्महत्या की खबरें छपती रहती हैं।

समाज के सब स्तर पर यही स्थिति है। "राजकीय अस्पतालों में जो रोगी इलाज के लिए भर्ती होते हैं, उन्हें भर पेट भोजन और साधारण औषधि भी नहीं मिलती। इसके अलावा अस्पताल में कई तरह की अव्यवस्था और अनियमितता है।"

देश के संतों, चिंतकों तथा बुद्धिजीवियों ने बराबर इस बात की उद्घोषणा की है कि "नीति- विहीन शासन कभी सफल नहीं हो सकता। नीति और सदाचार अध्यात्म की जड़ है। देश की अवनति तथा सामाजिक दूरव्यवस्था का मुख्य कारण यही है कि आज हम अपनी सांस्कृतिक धरोहर को भूल कर पाश्चात्य चकाचौंध की ओर आकर्षित हो गए हैं। ऊपरी आडंबर और शान-शौकत को ही मुख्य वस्तु मान कर हम अपनी शालीनता, गरिमा तथा जीवन मूल्यों को भूल गए हैं, जिसका फल है—पतन, निराशा और दुख। आज के संसार में सब कुछ उल्टा हो रहा है और इसीलिए लोग सत्य का दर्शन नहीं कर पाते। कबीर- पंथ की परंपरा में स्वामी अलखानंद लिखते हैं –

सिंह ही से स्यार लड़ाई में जीति।
साधु करे चोरि चोर को नीति।
लड्डू लेई खात स्वाद आवे तीति।
मरीच के खात स्वाद मीठ मीति।
ऐसी ही ज्ञान देखो उल्टा रीति॥

इस नाजुक परिस्थिति से अध्यात्मिकता तथा नैतिकता ही हमें उबार सकती है। कबीर- साहित्य ऐसे ही विचारों, भावनाओं और शिक्षाओं की गठरी है। उसमें अनमोल मोती गुंथे हैं। उन्होंने मानव जीवन के सभी पक्षों को स्पर्श किया है। अतः आज की स्थिति में कबीर साहित्य हमारा मार्ग दर्शन करने में पूर्ण रूप से सक्षम है।

एक बूंद से सृष्टि रची है, को ब्रह्ममन को सुद्र।
हमहुं राम का, तुमहुं राम का, राम का सब संसार॥

कबीर के उपदेश सार्वभौम, सार्वजनिक, मानवतावादी तथा विश्वकल्याणकारी है। उन्होंने सामान्य मानव धर्म अथवा समाज की प्रतिष्ठा के लिए जिस साधन का प्रयोग किया था, वह सांसारिक न होकर आध्यात्मिक था।

आधुनिक संदर्भ में कबीर के उपदेश सभी दृष्टियों से प्रासंगिक हैं। जिस ज्ञान और अध्यात्म की चर्चा आज के चिंतक और संत कर रहे हैं, वही उद्घोषणा कबीर ने पंद्रहवीं शताब्दी में की थी। अतः आज भी कबीर साहित्य की सार्थकता और प्रासंगिकता बनी हुई है। आज के परिवेश में जरूरी है कि इसका प्रसार किया जाए, ताकि देश और समाज के लोग इससे लाभांवित हो सके।

सांप्रदायिक तनाव की स्थिति आज देश में सर्वाधिक चिंतनीय है। देश में संप्रदाय के नाम पर लोगों को आपस में खूब लड़ाया जाता है। राजनैतिक दल

एवं राजनेता स्वयं जातिवाद या सांप्रदायवाद के प्रतीक बन गए हैं। आज हर वर्ष देश के कुछ भागों में सांप्रदायिक दंगे का भड़क जाना और सैकड़ों बेगुनाहों का खून बह जाना, सामान्य बात हो गई है।

1947 ई. में सांप्रदायिकता को आधार बनाकर देश का विभाजन कर दिया गया। यही सांप्रदायिकता की आग लगातार बढ़ती ही गई, अब तो स्थिति इतनी अधिक उत्तेजक हो गई है कि इस ओर सभी बुद्धिजीवियों और शुभ- चिंतकों का ध्यान आकृष्ट होने लगा है। प्रत्येक साल कही- न- कहीं दंगा होता रहता है। हजारों लोग हर दंगे में मारे जाते हैं। हजारों गिरफ्तारियाँ होती हैं। लाखों- करोड़ों की संपत्ति जला दी जाती है। यह सब आपसी धार्मिक मतभेदों की वजह से होता है। आवश्यकता है कि सभी धर्मों के प्रति आदर की भावना रखकर, भारत के समस्त नागरिकों को बंधुत्व की भावना सहयोगपूर्वक रहने के प्रति जागरूक किया जाए।

हिंदू तुरुक की एक राह में, सतगुरु है बताई।
कहै कबीर सुनहू हो संतों, राम न कहेउ खुदाई।।

संत महात्मा कबीर ने सांप्रदायिकता का विरोध कड़े शब्दों में किया है। कबीर साहब से अधिक जोरदार शब्दों में सांप्रदायिक एकता का प्रतिपादन किसी ने नहीं किया।

सोई हिंदू सो मुसलमान, जिनका रहे इमान।
सो ब्राह्मण जो ब्राह्म गियाला, काजी जो जाने रहमान।।

कबीर के अनुसार सच्चा हिंदू या मुसलमान वही है, जो ईमानदार है और निष्ठापूर्वक अपने कर्तव्य का पालन करता है। सारे अनर्थों की जड़ यही बेईमानी है। आदमी बईमान हुआ, तब सब अनर्थ कामों की शुरुआत हो गई। आज समाज में चारों तरफ बेईमानी के कारण ही वातावरण दुखी और असहनीय हो रहा है। आज का मनुष्य एक ओर ईश्वर की पूजा करता है और दूसरी ओर मनुष्य का तिरस्कार करता है।

कबीर के अनुसार प्रेम ही ऐसा तत्त्व है, जो पारस्परिक मैत्री का भाव लाता है और कटुता को समाप्त करता है।

काहि कबीर वे दूनों भूले, रामहि किन्हु न पायो।
वे खस्सी वे गाय कटावै, वादाहि जन्म गँवायो।।
जेते औरत मरद उवासी, सो सब रूप तुम्हारा।
कबीर अल्ह राम का, सो गुरु पीर हमारा।।

हिंदू- मुस्लिम एकता के लिए कबीर के उपदेश और उनके द्वारा किया गया कार्य आज सामान्य लोगों के अंदर फैलाने और बताने की आवश्यकता है। कबीर ने धार्मिक रुढ़ियों, उपासना संबंधी मूढ़ मान्यताओं तथा मंदिर- मस्जिद विषयक अंध आस्थाओं के अंतर्विरोधों को निर्ममतापूर्वक अस्वीकार कर दिया था।

हिंदू कहे वह राम हमारा, तुरुक कहे रहिमाना
सत गहे, सतगुरु को चीन्हे, सतनाम विश्वासा,
कहै कबीर साधन हितकारी, हम साधन के दासा।

वे कहते, प्रत्येक मानव को गुरु भक्ति और साधन का अभ्यास करना चाहिए। इस सत्य की प्राप्ति से सब अवरोध समाप्त हो जाते हैं।

जो सुख राम भजन में, वह सुख नहीं अमीरी में।

सुख का आधार धन- संपत्ति नहीं है। इसके अभाव में भी मानव सुख- शांति का जीवन जी सकता है।

चाह मिटी, चिंता मिटी मनवा बेपरवाह,
जिसको कुछ नहीं चाहिए वह शहनशाह।

वे कहते हैं, धरती पर सभी कष्टों की जड़ वासना है, इसके मिटते ही चिंता भी समाप्त हो जाती है और शांति स्वमेव आने लगती है। कबीर के कहने का तात्पर्य है कि पूजा- पाठ साधना कोई शुष्क चीज नहीं है, बल्कि इसमें आनंद है, तृप्ति है और साथ ही सभी समस्याओं का समाधान। इसलिए इसको जीवन में सर्वोपरि स्थान देना चाहिए। साधना के प्रति लोगों के हृदय में आकर्षण भाव लाने हेतु उन्होंने अपना अनुभव बताया।

इस घट अंतर बाग बगीचे, इसी में सिरजन हारा,
इस घट अंतर सात समुदर इसी में नौ लख तारा।

गुरु के बताए साधन पर चलकर ध्यान का अभ्यास करने को वे कहते हैं। इससे दुखों का अंत होगा और अंतर प्रकाश मिलेगा। गुरु भक्ति रखकर साधन पथ पर चलनेवाले सभी लोगों को आंतरिक अनुभूति मिलती है।

कबीर का प्रेम

कलि खोटा जग अंधेरा, शब्द न माने कोय,
जो कहा न माने, दे धक्का दुई और।

महात्मा कबीर किसी भी स्थिति में हार मानने वाले नहीं थे। वे गलत लोगों को ठीक रास्ते पर लाना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने दो- चार धक्के खाना भी पसंद था। इस प्रकार कहा जाता है कि कबीर लौह पुरुष थे। वे मानव को प्रेम को अपनाने कहते हैं। उनका कहना है कि ईश्वर का दूसरा नाम प्रेम है। इसी तत्त्व को अपनाने पर जीवन की बहुत सारी समस्याएँ स्वतः सुलझ जाती हैं।

मैं कहता सुरजनहारी, तू राख्यो अरुझाई राखे

कबीर साहब सदा सीधे ढग से जीवन जीने की कला बताते थे। उनका कहना था कि प्रेम के अभाव में यह जीवन नारकीय बन जाता है।

कबीर प्याला प्रेम का अंतर दिया लगाय,
रोम- रोम से रमि रम्या और अमल क्या लाय,
कबीर बादल प्रेम का हम पर वरस्या आई,
अतरि भीगी आत्मा, हरी भई बन आई।

यही 'प्रेम' सब कुछ है, जिसे पान कर कबीर धन्य हो गये। इस बादल रुपी प्रेम की वर्षा में स्नान कर कबीर की आत्मा तृप्त हो गई और उसका मन आनंद विभोर हो उठा। वे कहते हैं, प्रेम ही सर्व है। उसी के आधार पर व्यक्ति एक दूसरे के साथ बंधुत्व की भावना को जागृत कर सकता है। आज के परिवेश में इसी बंधुत्व की भावना के प्रसार की नितांत आवश्यकता है। कबीर साहब की वाणी आज भी हमें संदेश दे रही है कि संसार में कामयाब होने का एक मात्र मार्ग धर्म और समाज की एकता है।

संत कबीर स्वयं ऐसे परिवार में जन्में थे, जो तत्कालीन समाज व्यवस्था में अस्पृश्य था। उन्होंने स्वयं वर्ण- व्यवस्था की कटुताओं को झेला था। कबीर साहब मध्यकाल में ब्राह्मण- व्यवस्था के विरुद्ध इस विद्रोह के सबसे बड़े नेता माने जाते हैं। आपने सर्वप्रथम भक्ति परंपराओं का प्रचार किया, जोकि ब्राह्मण- व्यवस्था के विरुद्ध थी। आप जिस तरह ब्राह्मण- व्यवस्था के गढ़ में, काशी में रहकर, इस व्यवस्था पर प्रहार करते रहे, यह अति सराहनीय माना जाता है। यहाँ के ब्राह्मणों ने तपस्थली को ब्राह्मण और क्षत्रियों तक ही सीमित कर दिया था। कबीर साहब ने इसके खिलाफ नया मूल्य स्थापित किया। उन्होंने वहाँ, 'हरिजन सई न जाति' भक्त से समान कोई दूसरी जाति नहीं है। उन्होंने स्पष्ट तौर पर कहा कि जो भक्त है, वह यदि अस्पृश्य है, तब भी ब्राह्मणों से श्रेष्ठ है। उन्होंने इस प्रकार भक्ति के हथियार से वर्णाश्रम अन्यायपूर्ण व्यवस्था पर प्रहार किया।

तत्कालीन समाज व्यवस्था में जो व्यक्ति स्वयं स्थान नहीं पाता था, उसे अंग्रेज विचारक **कीलिन विल्सन** ने "आउट साइडर" कहा था। भक्ति काल का प्रत्येक कवि 'आउट साइंडर' कहलाया, क्योंकि ये कवि रुढ़ियों अन्यायपूर्ण व्यवस्थाओं एवं परंपराओं को छोड़कर चलना चाहते थे। कबीर साहब मध्य काल के ऐसे पहले कवि थे, जिन्हें "आउट साइडर" कहा गया। कबीर लोक, वेद, शास्त्र तथा मंत्र को छोड़कर चलना चाहते थे। कबीर साहब को संग्राम का योद्धा कहा जाए, तो अच्छा होगा। कबीर का मानना था कि अगर भगवान को वर्ण-विचार कहना होता, तो वह जन्म से ही तीन विभाजक खींच देते। उत्पत्ति की दृष्टि से समस्त जीव समान हैं।

पंडित को वह वटूक्ति सुनाते हुए कहते हैं, जैसे गदहा चंदन का भार वहन करता है, पर उसकी सुगंधि से अभिमूढ़ नहीं होता। उसी तरह पंडित भी वेद पुराण पढ़कर राम नाम के वास्तविक तत्त्व नहीं पाता।

पांडे कौन कुमति तोहि लगि, तू राम न जपहि अभागा।
वेद पुराण पढ़त अस पांडे, खर चंदन जैसे भारा॥
राम नाम तत समझत नाहीं, अति अरे मुखि धारा।
वेद पढ़ता का यह फल पाडै राबधटि देखौ रामा॥

कबीर के अनुसार ब्राह्मण को तत्त्वानुभव नहीं होने के कारण उसकी बात कोई नहीं मानता है।

पंडित संति कहि रहे, कहा न मानै कोई।
ओ अशाध एका कहै, भारी अचिरज होई॥

कबीर साहब ब्राह्मण को जाति- पाति बाँटने का जिम्मेदार मानते हुए कहते हैं कि ब्राह्मण का ज्ञान बासी है और उसका व्यक्तित्त्व पाखंडपूर्ण है –

लिखा लिखी की है नहीं, देखा देखी बात।
दुल्हा- दुल्हिन मिल गए, फीको पड़ी बारात।

तत्कालीन ब्राह्मण समाज के लोला ज्ञान पर प्रहार करते हुए वे कहते हैं–

चार यूं वेद पढ़ाई करि, हरि सूंन लाया हेत।
बाँलि कबीरा ले गया, पंडित ढूँढै खेत॥

कबीर के अनुसार मनुष्य जन्म से समान है, लेकिन समाज ने उसे रुढ़ियों में जकड़ लिया है तथा भाँति-भाँति की क्यारियाँ गढ़ ली गई है। इस प्रकार एक

क्यारी का बिखरा, दूसरी क्यारी में नहीं जा सकता है, इस प्रकार कवि जातिवाद और छुआ- छूत सबको पाखंड मानते हैं और कहते हैं –

पाड़ोसी सू रुसणां, तिल-तिल सुख की होणि।
पंडित भए सरखगी, पाँणी पीवें छाँणि॥

पंडित सरावगी हो गए हैं और पानी को छान कर पीने लगे हैं, अर्थात् वे ढोंग करते हैं और दूसरे के धर्म की अनावश्यक नुक्ताचीनी और छानबीन करते रहते हैं। आपके अनुसार पंडित का गोरख धंधा बटमारी और डकैती है। पंडित ने इस संसार को पाषाण- मूर्तियों से भर दिया है और इसी के आधार पर पैसा कमाता है।

काजल केरि कोठरी, मसिके कर्म कपाट।
पाहनि बोई पृथमी, पंडित पाड़ी बाट॥

कबीर साहब जात- पात की तुलना में कर्म को श्रेष्ट मानते हैं –

ऊँचे कुल क्या जनमियाँ, जेकरणी ऊँच न होई
सोवन कलस सुरै भरया, साधू निंधा सोई॥

अपनी पूरी जिंदगी में कबीर ने सामाजिक कुरीतियों के झाड़- झंखाड़ को साफ करने और उच्चतर मानव का पथ प्रशस्त करने का प्रयास किया।

कबीर साहब का भक्ति में अत्यधिक विश्वास था। भक्ति से युक्त व्यक्ति न तो ब्राह्मण होता है और न चंडाल, बल्कि वह सिर्फ भक्त होता है। कबीर साहब ने समाज के आपसी मतभेद को मिटाकर इस प्रकार का संदेश दिया है, जैसे हल्दी पीली होती है और चूना श्वेत, पर दोनों मिलकर अपना रंग मिलाकर लाल रंग की होली में परिणत हो जाते हैं –

कबीर हरदी पीयरी, चुना उजल भाय।
राम सनेही यूँ मिले, दन्यूं बस गमाय॥

कबीर की उपर्युक्त रमैनी के अनुसार, राम के भक्त विभिन्न जातियों का परित्याग एकाकार हो जाते हैं और वे अपने विभिन्न सांप्रदायिक भाव ईश्वर प्रेम की लालिमा में समाहित कर देते हैं। इस प्रकार काबा और काशी या राम और रहीम का भेद मिट जाता है, सब एक ही हो जाते हैं –

कावा फिर काशी भया, राम भया रहीम।
मोठ चून मैदा भया, बैठो कबीरा जीम॥

इस प्रकार कबीर साहब भक्ति के द्वारा सामाजिक भेदभाव को मिटाते हैं और मन के विधान का अतिक्रमण करने का उपदेश देते हैं।

3

कबीर के दर्शन

मध्यकालीन कवियों ने प्रेम को सबसे बड़ा पुरुषार्थ माना था। समाज में व्याप्त बुरारियों को ध्वस्त करने के लिए इन कवियों ने प्रेम की शरण ली थी। कबीर साहब ने इस समस्त काल में प्रेम को प्रतिष्ठा प्रदान की एवं शास्त्र- ज्ञान को तिरस्कार किया।

मसि कागद छूओ नहिं,
कलम गहयो नहिं हाथ।

कबीर साहब पहले भारतीय व हिंदी कवि हैं, जो प्रेम की महिमा का बखान इस प्रकार करते हैं –

पोथी पढ़ी- पढ़ी जग मुआ, पंडित भया न कोई।
ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय॥

कबीर के अनुसार ब्राह्मण और चंडाल की मंद- बुद्धि रखने वाला व्यक्ति परमात्मा की अनुभूति नहीं कर सकता है, जो व्यक्ति इंसान से प्रेम नहीं कर सकता, उसमें भगवान से प्रेम करने का सामर्थ्य नहीं हो सकता। जो व्यक्ति मनुष्य और मनुष्य में भेद करता है, वह मानव की महिमा को तिरस्कार करता है। वे कहते हैं मानव की महिमा अहम् बढ़ाने में नहीं है, वरन् विनीत बनने में है –

प्रेम न खेती उपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा प्रजा जेहि रुचे, सीस देहि ले जाय।

कबीर साहब ने प्रेम की जो परंपरा चलाई, वह बाद के सभी भारतीय रचनाओं कहीं–न–कहीं प्रभावित करता रहा है। इसी पथ पर चलकर रवीन्द्रनाथ टैगोर एक महान व्यक्तित्त्व के मालिक हुए।

कबीर भक्ति की साधना

कबीर के विचार से यह जीवन, संसार तथा उसके संपूर्ण सुख क्षणिक है। इनके पीछे भागना व्यर्थ में समय को गुजारना है। कबीर के अनुसार यह संसार दुखों का मूल है। सुख का वास्तविक मूल केवल आनंदस्वरूप राम है। इसकी कृपा के बिना, जन्म– मरण तथा तज्जन्य सांसारिक दुखों से मुक्ति नहीं मिल सकती। यही कारण है कि कबीर साहब राम की भक्ति पर अत्यधिक बल देते हैं और कहते हैं कि सब कुछ त्याग कर राम का भजन करना चाहिए।

'सरबु तिआगि भजु केवल राम'

कबीर कहते हैं कि राम या परमात्मा की भक्ति से ही माया का प्रभाव नष्ट हो सकता है तथा बिना हरि की भक्ति के कभी दुखों से मुक्ति नहीं हो सकती है।

बिनु हरि भगति न मुक्ति होइ, इउ कहि रमें कबीर

परंतु कबीर की दृष्टि से भक्ति पूर्णतः निष्काम होनी चाहिए, वे हरि से धन, संतान कोई अन्य सांसारिक सुख माँगने के विरुद्ध हैं, वे तो भक्ति के द्वारा स्वर्ग भी नहीं माँगना चाहते हैं।

कबीर के राम से आशय राजा दशरथ के पुत्र राजा राम नहीं हैं, बल्कि घट– घट में निवास करने वाले निर्गुण, निरंजन, निराकार, सत्यस्वरूप एवं आनंदस्वरूप राम हैं। उन्हें परमात्मा, हरि, गोविंद, मुरारी, अल्लाह, खुदा किसी भी नाम से पुकारा जा सकता है। उन्हें ढूंढ़ने के लिए वन में भटकने की आवश्यकता नहीं है, भक्ति और युक्ति से उनका हृदय में साक्षात्कार किया जा सकता है। कबीर के मतानुसार आनंदस्वरूप राम और मनुष्य की आत्मा कोई दो भिन्न तत्त्व नहीं हैं –

जल में कुंभ कुंभ में जल है, बाहरि भीतरि पानी।
फुटा कुंभ जल जलहि समाना, यहुतत कथैं गियानी।

कबीर कहते हैं–साधक अपना अहंभाव खोकर सागर में बूँद की तरह परमात्मा से मिल सकता है–

हंरत हरत हे सखी, गया कबीर हिराई।
बूँद समानी समद में, सोकत हरि जाई॥

कबीर के अनुसार मनुष्य को स्वयं यह विचार करना चाहिए कि दुख का वास्तविक कारण क्या है? सुख का मूल क्या है और उसको पाने का उपाय क्या है?

ज्ञानदाता गुरु को कबीरदास अत्यंत पूज्य मानते हैं, वो तो गुरु और गोविंद में कोई अंतर नहीं मानते हैं –

गुर गोविंद तौ एक है, दूजा यहू आकार।
आपा भेट जीवत मरै, तौ पावै करतार॥

कबीर की भक्ति साधना में वेद शास्त्र के ज्ञान यज्ञ, तीर्थ, व्रत, मूर्ति पूजा आदि की कोई आवश्यकता नहीं है। कबीर ने अपनी भक्ति में जिस निर्गुण आराध्य का वर्णन किया है वह उपनिषदों की अद्वैती भावना के प्रभाव से प्रभावित है। कबीर की ब्रह्मभावना अधिकांश अद्वैती है, किन्तु कहीं अद्वैत से भिन्न भी है। इसलिये कबीर किसी सिद्धान्त के अनुयायी नहीं न ही प्रस्थापक हैं। उनका ब्रह्म उनके अनुभवों की देन है। कबीर पहले साधक हैं, फिर कवि। वे अपनी भक्ति साधना में जिस-जिस रूप में अपने ब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं, उसी रूप में उसे वर्णित करते जाते हैं। वे निज ब्रह्म विचार और आत्म साधना में, विश्वास करते हैं। यही कारण है कि कबीर का ब्रह्म कभी किसी रूप में कभी किसी रूप में हमारे सामने आता है। यह तर्क और किसी दार्शनिक सिद्धान्त से बहुत ऊपर है, बस अनुभवों और अनुभूतियों का विषय है।

कबीर कहते हैं–

कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूंढे बन माहिं।
ऐसे घट घट राम हैं, दुनिया देखे नाहिं॥'

वे ईश्वर की अद्वैत सत्ता को स्वीकार करते हैं। वास्तव में उनका प्रभु रोम-रोम और सृष्टि के कण-कण में बसा है। वह मन में होते हुए भी दूर दिखाई देता है, किन्तु जब प्रियतम पास ही हो तो उसे संदेश भेजने की क्या आवश्यकता? इसलिये कबीर कहते हैं–

प्रियतम को पतिया लिखूं, कहीं जो होय बिदेस।
तन में, मन में, नैन में, ताकौ कहा संदेस॥

वास्तव में प्रिय के साथ इस संदेश व्यवहार को वे दिखावा मात्र मानते हैं, कृत्रिमता मानते हैं। जब ईश्वर रूपी प्रिय की सत्ता हर स्थान पर विद्यमान हो तो इस दिखावे की आवश्यकता क्या है?

कागद लिखै सो कागदी, कि व्यवहारी जीव।
आतम दृष्टि कहा लिखै, जित देखे तित पीव॥

कबीर ने अपने प्रिय की उपस्थिति उसी प्रकार सर्वत्र मानी है जिस प्रकार अद्वैत भावना के पोषक प्रतिबिम्बवाद में। वे भी ईश्वर की सर्वव्यापकता को गहराई से अनुभव किया करते थे।

ज्यूं जल में प्रतिबिम्ब, त्यूं सकल रामहि जानीजै।

इन दोहों में प्रकाशित उनकी अद्वैत भावना के साथ यह स्वत: ही स्पष्ट हो जाता है कि उनका ब्रह्म निर्गुण निराकार है।

जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना, इहिं तथ कथ्यौ ज्ञानी॥
जाके मुंह माथा नहीं, न ही रूप सुरूप।
पुहुप बास ते पातरा ऐसा तत्त्व अनूप॥

कबीर की निर्गुण भक्ति में साकार ब्रह्म के जो तत्त्व आ गये हैं, वे कोरे तीव्र भक्ति भावना के द्योतक नहीं हैं, अपितु जन मन में साकार स्वरूप की जो उपासना प्रचलित थी, उसका विरोध करते हुए भी कबीर कहीं न कहीं उसके प्रभाव से बच नहीं सके हैं। वास्तव में लोकप्रचलित परम्परा कहीं न कहीं प्रतिबिम्बित हो ही जाती है। कबीर की भक्ति सरस और विलक्षण है, जिसे आप किसी सीमा में नहीं बांध सकते। कबीर ने भक्ति को मुक्ति का एकमात्र साधन माना है–

भक्ति नसैनी मुक्ति की।
क्या जप क्या तप क्या संजम क्या व्रत और क्या अस्नान
जब लगी जुगत न जानिये, भाव भक्ति भगवान॥'

सर्वस्व समर्पण के साथ-साथ अपने अस्तित्त्व को साध्य में लीन करने की उत्कृष्ट भावना कबीर में परिलक्षित होती है। यही कारण है कि वे ईश्वर के गुलाम बनने में भी नहीं हिचकते।

मैं गुलाम मोहि बेचि गुंसाईं।
तन मन धन मेरा राम जी के ताईं॥

ईश्वर सामीप्य की भावना तो उनसे यह तक कहलवा लेती है–

कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाऊँ।
गले राम की जेवड़ी जित खैंचे तित जाऊँ॥

विरह भी कबीर की भक्ति का एक अंग है–

मन परतीति न प्रेम रस, ना इस तन में ढंग।
क्या जाणौ उस पीव सूं कैसी रहसि संग।।

कबीर काव्य की यह तडप अद्‌भुत है। ऐसे अलौकिक प्रिय को जब आत्मा नहीं पाती तो उसके वियोग में विचलित रहती है। जब से गुरु ने उस परमात्मा का ज्ञान करवाया है, भक्त तभी से उसके लिये व्याकुल है।

गूंगा हुआ बावला, बहरा हुआ कान।
पाँऊ थें पंगुल भया, सतगुरु मारा बान।।

कबीर के भक्ति व्याकुल मन ने विरह का जो वर्णन किया है वह इतना मार्मिक तथा स्वाभाविक है कि लगता है कबीर का पौरुषत्व यहाँ समाप्त हो गया है और उनकी आत्मा ने स्त्री रूप में प्रियतम के लिये यह शब्द कहे हैं–

बरहनी उभी पंथ सिरि, पंथी बूझै धाई।
एक सबद कह पीव का कबर मिलेंगे आई।।

जब भक्त का मन विरह से दग्ध हो उठता और प्रिय के वियोग में टूक टूक हुआ जाता है तब वह विवश हो ईश्वर से यह कह बैठता है–

कै बिरहणी कूं मीच दै, कै आपा दिखलाए।
आठ पहर का दाझणा, मो पै सहा न जाए।।

वास्तव में यह प्रेम का चरमोत्कर्ष है, जो प्रभु प्रियतम के अभाव में भी आत्मा परमात्मा, भक्त भगवान के अटूट प्रेम की उद्घोषणा कर रहा है।

कबीर की भक्ति में निष्काम भाव है कि यदि उन्हें प्रभु प्राप्त भी हो जाएं तो उनसे वे किसी कामना सिद्धि की बात नहीं सोचते। उनकी एकमात्र कामना है–

नैनन की करि कोठरी, पुतली पलंग बिछाय।
पलकन की चिक डारिकै, पिय को लेऊं रिझाय।।

भक्ति में कामना के घोर विरोधी थे कबीर–

जब लगि भगति सकामता तब लगि निष्फल सेव

इसलिये अन्त समय में भी कबीर ने प्रभु में ध्यान लगाने की बात कही है–

कबीर निरभै राम जपि, जब लग दीवै बाती।
तेल घटया बाती बुझी, सोवेगा दिन राति।।

कबीर की भक्ति में पुस्तकीय ज्ञान का कोई महत्व नहीं था। उनका विश्वास था कि ईश्वर में लगायी अटूट लय ही मुक्ति के लिये काफी है। भक्त

के लिये तो बस इतना काफी है कि वह विषय वासनाओं से मुक्त हो ईश्वरीय प्रेम को प्राप्त करे–

पोथि पढ़ पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय॥
कबीर पढ़िवा दूर कर, पोथी देय बहाय।
बावन आखर सोध कर, रमैं ममैं चित्त लाय॥

कबीर की भक्ति में कोई भेदभाव नहीं। भक्ति के द्वार सबके लिये खुले हैं। सबकी रचना उन्हीं पंच तत्त्वों से हुई है और सबका रचयिता वही पिता परमात्मा है–

जाति पांति पूछै नहिं कोई।
हरि को भजै सो हरि का होई॥

कबीर के अनुसार भक्ति मार्ग पर तो एकमात्र मार्गदर्शक गुरु ही हैं। गुरु के बिना भक्ति मार्ग कौन प्रशस्त करेगा?

सतगुरु की महिमा अनत, अनत किया उपकार।
लोचन अनत उघाड़िया, अनत दिखावन हार॥

उस पर साधु संगति, जिसकी महिमा का भी कोई बखान नहीं। इसे कबीर ने स्वर्ग से अधिक महत्व दिया है–

राम बुलावा भेजिया, दिया कबीरा रोय।
जो सुख साधु संग में, सो बैकुंठ न होय॥'

कबीर की भक्ति अद्‌भुत है, बहुत समर्पित और गंगा के समान पवित्र है, जिसके कई-कई पावन घाटों पर जाने कितने भटकते मन रूपी हिरणों को विश्रान्ति मिलती है।

4

कबीर का समाज दर्शन

कबीर का अवतरण जिस काल खण्ड में हुआ, उस समय समाज नाना प्रकार की विच्छृंखलताओं से गुजर रहा था। एक ओर इस्लाम के आगमन के पूर्व ही भारतीय सामंतवादी ढाँचा सामाजिक रूढ़ियों के चलते वेगहीन हो चला था। उसकी शोषणवादी प्रवृत्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही थी, दूसरी ओर इस्लाम के आगमन ने इस सामाजिक जटिलता को और भी अधिक जटिल बना दिया।

यद्यपि प्रतिक्रियात्मक तौर पर समाज की जड़ता में तूफानी विक्षोभ उमड़ा, जिसने समूचे समाज को आत्मनिरीक्षण का अवसर प्रदान किया। लेकिन समाज की जड़ता एवं विच्छृंखलता में किंचित कमी होने की बजाए उत्तरोत्तर वृद्धि होती गयी।

समूचे भारतीय परिवेश के धार्मिक होने के कारण शोषण का स्वरूप भी बहुत कुछ धार्मिक लबादा ही ओढ़े था। परन्तु इस समूची विच्छृंखलता का एक धनात्मक परिणाम यह हुआ कि भारतीय समाज का आत्म निरीक्षण दिन प्रतिदिन प्रबल हुआ और किंचित कबीर जैसे महापुरुष संक्रमण काल की इन्हीं स्थितियों के परिणाम थे।

इस्लामी शासन में भारतीय सामंतवादी शासन की जड़ें और भी मजबूत हो गई थीं। सामंतवादी ढाँचे के शोषण का मुख्य आधार देहवाद और अर्थवाद था। देहवाद के अन्तर्गत समूचा समाज विलासी प्रवृत्ति का हो चला था। स्त्री उपभोग्य

वस्तु हो गयी थी और नारी की स्वतंत्रता अपदस्थ हो जाने के कारण सामाजिक जड़ता बढ़ती चली जा रही थी।

वैसे भी यह मनोवैज्ञानिक सन्दर्भ है कि जिस समाज में देहवाद को प्राथमिकता दी जाती है, उस समाज को अपने उत्कर्ष के विषय में चिन्ता करने का अवसर नहीं मिल पाता है। इस्लामी शासकों की विलासी प्रवृत्ति के कारण ऐन्द्रियवाद के प्रभुत्व ने समाज को पतनोन्मुख बना दिया।

ऐसे समाज को देखकर कबीर जैसे पुरुष का हृदय रो पड़ा। वस्तुतः कबीर की सामाजिक चिन्ता उस सच्चे आध्यात्मिक व्यक्तित्त्व की चिता थी जो मानवतावाद, सर्वात्मवाद अद्वैतवाद की दृष्टि से समाज को जानता-पहचानता है।

संसाररूपी सागर अनंत रत्नों से भरा हुआ है। भारतभूमि तो रत्नों की खान ही रही है, उन्हीं महान रत्नों में से एक थे संत कबीर। वे भक्त और कवि बाद में थे, पहले समाजसुधारक थे। वे सत्य के अन्वेषक और धर्म के विश्लेषक थे। वे सिकंदर लोदी के समकालीन थे। कबीर का अर्थ अरबी भाषा में 'महान' होता है। कबीर सधुक्कड़ी भाषा में किसी भी संप्रदाय और रूढियों तथा कट्टरपंथ का खुलकर विरोध किया। हिंदी साहित्य में कबीर का, व्यक्तित्त्व अनुपम है उन्होंने ऊँच-नीच तथा जाँति-पाँति के भेदों का विरोध किया। समाज में व्याप्त अन्धविश्वासों, रूढियों पर जमकर प्रहार किया है। कबीर को शांतिमय जीवन प्रिय था और वे अहिंसा, सत्य, सदाचार आदि गुणों के प्रशंसक थे। उस समय हिन्दू जनता पर मुस्लिम आतंक का कहर छाया हुआ था। कबीर ने अपने पंथ को इस ढंग से विकसित किया, जिससे सभी क्षेत्रों में फैली हुई सामाजिक बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया। उनके साहित्य में समाजसुधार की जो भावना मिलती है उसे इस प्रकार देख सकते है-

धार्मिक पाखंड का खंडन

कबीर धार्मिक पाखंड का विरोध करते हुए कहते है कि, भगवान को पाने के लिए मन से पवित्र होना आवश्यक है। भगवन न मंदिर में है, न मस्ज्जिद में है, ना वह गिरिजाघर में है। वह तो हर मनुष्य में है।

माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर,
कर का मनका डारि के मन का मनका फेर।
काकर पाथर जोरि के मस्जिद लई चुनाय,
ता चढ़ी मुल्ला बाग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय।

पाथर पूंजे हरि मिले, तो में पूंजू पहाड़,
घर की चाकी कोई न पूंजे, पिसी खाई संसार।

हिंसा का विरोध

कबीर हिंसा का विरोध करते है। प्राणिमात्र को मारकर उन्हें खाना कबीर को पसंद नहीं। वे कहते है कि,

बकरी पाती खात है, ताकी काढी खाल,
जे नर बकरी खात है, तिनको कौन हवाल।

अहंकार का त्याग

कबीर के अनुसार, जिसमें प्रेम, दया, करुणा है वही सबसे बड़ा पंडित है। किताबी ज्ञान रखनेवाला सच्चा पंडित नहीं हो सकता। वे कहते है कि, मनुष्यको कभी गर्व नहीं करना चाहिए। कभी भी दूसरों पर हँसना नहीं चाहिए। यह मनुष्य जन्म एक बार ही मिलता है। वे कहते है कि,

पोथी पढ़ी-पढ़ी जग मुआ पंडित भया न कोय,
ढाई आखर प्रेम का पढ़े, सो पंडित होई।
कबीरा गरब न कीजिये, कबहू न हंसिये कोय,
अबहू नाव समुद्र में, का जाने का होय।
पानी केरा बुदबुदा, अस मानस की जात,
एक दिन छिप जात है, जों तारा प्रभात।

जाँति-पाँति का विरोध

कबीर जाँति-पाँति, ऊँच-नीच को नहीं मानते। वे ज्ञान को महत्वपूर्ण मानते हैं साथ ही कहते हैं कि, मनुष्य बड़ा होने से महान नहीं होता, बल्कि दूसरों के लिए उपयोगी होने से महान बनता है।

जाँति न पूछो साधू की, पूछ लीजिये ज्ञान,
मोल करो तलवार का पड़ा रहने दो म्यान
बड़ा हुआ तो क्या हुआजैसे पेड़ खजूर,
पंथी को छाया नहीं फल लगे अति दूर।

सदाचरण, सत्य पर बल

वे युग के प्रति सचेत थे। सत्य पर बल देते हुए कहते हैं कि,

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप,
जाके हृदय साँच है, ताके हृदय आप

परोपकार की भावना

हमारी संस्कृति में परोपकार का महत्वपूर्ण स्थान है। कबीर कहते है कि, परोपकार का भाव यह है कि, हम दूसरों की भलाई का मार्ग प्रशस्त करें, दूसरों के दु:ख को अपना दु:ख समझें और वह दु:ख दूर करने के लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर दें। इसी संदर्भ में वे कहते है कि,

मर जाँऊ मांगू नहीं, अपने तन के काज,
पर स्वारथ के कारणे, मोहि न मांगत लाज'।

संक्षेप में कह सकते है कि, कबीर एक महान समाजसुधारक थे। उन्होंने अनुभूत सत्य के आधार पर समाज का मार्गदर्शन किया है। कुसंगति, छलकपट, अहंकार, निंदा, जातिभेद, धार्मिक पाखण्ड, आदि को त्यागकर ही सच्चा मानव बना जा सकता है। वे आचरण कि शुद्धता पर बल देते हैं। मानव जीवन बड़ा अनमोल है इसलिए उसका महत्त्व जानकर समय का सदुपयोग करना चाहिए। असहाय प्राणियों को मार कर खाना कबीर को पसंद नहीं। हिंसा का वे विरोध करते हैं। सचमुच, कबीर का सम्पूर्ण साहित्य समाज को सही राह दिखाकर उस पर चलने के लिए प्रेरित करता है।

यह सुस्पष्ट तथ्य है कि कबीर की मूल चिन्ता आध्यात्मिक है, लेकिन अध्यात्म के क्षेत्र में उनका सजग व सचेत व्यक्तित्त्व प्रकाश में आता है। यह इस बात का प्रमाण है कि उनकी सामाजिक चिन्ता आध्यात्मिक चिंता से कम नहीं है।

चूंकि कबीर का अध्यात्म आकाशीय नहीं था, जमीन के सच से जुड़ा था। उनके जैसे अंनत के सत्य के राही के लिए समाज भला अलग कैसे रह सकता था! इन्हीं सन्दर्भों में कबीर जैसे आध्यात्मिक व्यक्तित्त्व के समाजवाद में जनवाद की तलाश करना अयुक्तिगत व अप्रासंगिक नहीं होगा।

यद्यपि कबीर की सामाजिक चिन्ता कहीं भी राजनीतिक परिदृश्य से सीधे नहीं टकराती है, जबकि उस समय की सामाजिक विच्छृंखलता पूरी सामाजिक व्यवस्था पर हावी थी। यह प्रश्न विचारणीय अवश्य है कि उनकी अध्यात्म दृष्टि में राजनीति का महत्व, समाज से बढ़कर नहीं हो सकता।

उनकी बाणियों में ऐसे स्थल देखने में आते हैं जहाँ परोक्ष रूपेण तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था पर प्रहार है। जब वे समूची सामाजिक व्यवस्था पर प्रहार करते हैं, जड़ व्यवस्था पर प्रहार करते हैं, तब यह बात सिद्ध हो जाती है कि वे सामाजिक, सांस्कृतिक व्यवस्थाओं के अतिरिक्त राजनीतिक व्यवस्था पर भी प्रहार कर रहे हैं, यथा-निम्नलिखित साखी में उनकी पीड़ा की वे गहरी रेखाएँ उभरती हैं, जो तत्कालीन व्यवस्था का मुखौटा खोलती हैं-

चलती चाकी देख के दिया कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय॥

इस साखी का केवल आध्यात्मिक अर्थ ही यथेष्ट नहीं है बल्कि सामाजिक सरोकारों से इसका संबंध है। अपनी आध्यात्मिक सोच के आलोक में कबीर समाज के लिए जो दर्शन देते हैं, उनमें भी उनका विद्रोही तेवर उभरकर सामने आता है।

इसका कारण है यथार्थवादी सोच के धरातल पर कबीर इस बात से आश्वस्त थे कि जड़ समाज ऐसी ही वाणी से चेत सकता है, जो उसे अपने गति के प्रतिकूल लगे, और ऐसी स्थिति में व्यंग्य और उपहास अनिवार्य तरीका हो जाता है। कबीर देहवादी सामाजिक व्यवस्था को ललकारते हुए, नरक की घोषणा करते हैं।

वे कहते हैं "नारी माया है, ठगिनी है।" ऐसे समय में वे सती नारी का आदर्श समाज के सामने रखते हैं, जब समाज नारी को भोग्या ही मानता था। अर्थवाद के खिलाफ भी कबीर विद्रोही तेवर में समाज को प्रबोध देते हैं-

मन बनिया बनिज न छोड़े, जनम-जनम का मारा बनिया
अजहूँ घूर न तोले।

कबीर जानते थे कि समाज के पतन की जड़ अहंकार और अहंकार की जड़ पूंजी का संचय है।

स्थिति में वह सामाजिक नश्वरता के प्रति समाज को सचेत करते हैं-

चलत का फूले फूले हो चलत का टेढ़े-देते हो

सामंतवादी व्यवस्था में कबीर बेहतर ढंग से जानते थे कि उनकी बातों से समाज का शोषक वर्ग चिढ़ रहा है।

अपनी इस वेदना से परिचित कराते वह कहते हैं-

साँच कहौं तो मारन धावै,
झूठे जग पतियाना।

कबीर समूची सामंतवादी व्यवस्था के खिलाफ थे। वे पूंजीवादी व अर्थव्यवस्था की परिणति नरक बताते हैं और अपने आध्यात्मिक ढंग से समाज को सचेत करते हैं–

यह ऐसा संसार है
जैसा सेमर फूल,

यह उल्लेखनीय तथ्य है कि कबीर जैसा आध्यात्मिक व्यक्तित्त्व जो कि रहस्यवादी पदों को गाते नहीं थकता है, वह भाग्यवादी आधार पर कोई बात नहीं कहता बिना उसे अनुभव की कसौटी पर कसे। जनवादी व्यवस्था के अन्तर्गत विवेकवाद को महत्व दिया जाता है। यह अपेक्षा की जाती है कि समाज सारे अंधविश्वास के खिलाफ विवेक का अवलम्ब ग्रहण करे। कबीर की सामाजिक सोच में विवेकवाद स्पष्टतः परिलक्षित होता है।

वह समूची व्यवस्था से अपना अलगाव करते हुए समाज के रूढ़िवादी वर्ग को ललकारते हुए कहते हैं–

तू कहता कागद की लेखी,
मैं कहता आंखन की देखी।

अनुभूति की कसौटी पर ही सत्य को परखने के कारण कबीर की दृष्टि सामाजिक व्यवस्था के मूल में बहुत गहरी हो जाती है। वह व्यक्तिवादी व्यवस्था के खिलाफ है, जिसमें स्वार्थ का ही बोलबाला है। इसी स्थिति को लक्षित करते हुए कहते हैं कि चारों तरफ आग लगी हुई है, मनुष्य को चाहिए कि वह मानवतावादी चरम सत्य के मूल्यों के जल से इस आग को बुझा ले–

कबीर चित्त चमंकिया चहुँदिसि लागी आगि।
हरि सुमिरन हाथुं घड़ा बेगे लेहु बुझाइ।

कबीर के राम, गोविन्द, अलख निरंजन सामाजिक सन्दर्भ में चरम उदात्त मानवीय मूल्यों के समवाय है।

वे सत्य को ही ईश्वर बताते हैं–

'साँच बराबर तप नहीं'

कबीर का यह कथन है कि जब तक व्यक्तिवाद का समष्टिवाद में विलय नहीं हो जायेगा तब तक अपेक्षित समाज व्यवस्था को हम प्राप्त नहीं कर सकते।

इसलिए वे कहते हैं–

'मैमंता मन मारि रे'

कबीर इस सत्य से बेहतर ढंग से परिचित थे कि समाज के पतन की जड़–वर्ग भेद एवं जाति भेद में निहित है। इस्लाम के आने के पूर्व तक सनातनी हिन्दू व्यवस्था में वर्णाश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत पहले जातिभेद पनपा और फिर जातिभेद ने वर्ण भेद का रूप धारण किया फिर इस्लाम के आने के बाद सम्प्रदाय–भेद और जुड़ गया।

अब इन तीनों भेदों के बीच समाज में सामंजस्य व संतुलन स्थापित हो तो किस तरह। एंगेल्स शोषणवाद, पूंजीवादी के मूल में, परिवार, पूंजी सम्पत्ति, को जिम्मेदार मानता था। कबीर इन्हीं तीनों को माया कहते हैं। वे माया को वैश्या, डहडही, विष की बेल, बताते हैं। शोषणवादी व्यवस्था का प्रमुख विकार बताते हैं। ये शोषक व शोषित दोनों का रक्त चूसती हैं। कबीर सभी प्रकार के भेद की जड़ ही मिटा देना चाहते हैं।

जातिभेद के खिलाफ वे सनातनी हिन्दुओं को फटकारते हुए थकते नहीं–

'एक बूद एककै मलमूतर, एक चाम एक गुदा।
एक ज्योति थैं सब उपजना को वामन को सूदा।।'

सम्प्रदायवाद के खिलाफ उनकी भाषा और उग्र हो जाती है–

'अरे इन दोउन राह न पाई।
हिन्दू अपनी करैं बड़ाई गागर छुअन न देई।।
वेश्या के पावन तर सोवै यह देखो हिन्दुआई।
मुसलमान के पीर औलिया मुर्गा–मुर्गी खाई।।'

कबीर प्रत्येक सामाजिक रूढ़ि के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद करते हैं। इन्हें उन बाह्य आडम्बरों तीर्थ, रोजा, नमाज से चिढ़ है जिनके चलते समाज आपस में लड़ रहा है।

वे प्रत्येक प्रकार के बाह्य आडम्बर को निसार बताते हैं।

इस प्रकार कबीर समाज की संवेदनात्मक रूढ़ियों पर बहुत तीखा प्रहार करते हैं, जिससे सम्बन्धित वर्ग तिलमिला–सा जाता है। हिन्दुओं और मुसलमानों के साम्प्रदायिक विद्वेष से समाज चरमराकर टूट रहा था, कबीर दोनों की पोल खोल देते हैं–

'सन्तो राह दुनौ हम दीठा।
हिन्दु तुर्क हठी नहिं मानै स्वाद सबनि को मीठा।।'

ऐसा नहीं है कि कबीर सामाजिक व्यवस्था के समक्ष केवल प्रश्नचिन्ह ही लगाते हैं। प्रश्न के अलावा वे समाधान भी देते हैं। उन्होंने उस समूची भेदवादी

व्यवस्था के लिए आज से 600 वर्ष पहले ही वह मानवतावादी समाधान पद्धति प्रदान की थी जिसे आज अत्यन्त प्रगतिवादी जन-व्यवस्था के रूप में लक्षित किया जाता है।

कबीर इस टूटते हुए समाज के लिए रास्ता देते हैं। यह दूसरी बात है कि, कबीर की कसौटियाँ अत्यन्त जटिल हैं, लेकिन यदि विचार किया जाए तो सर्वाश्लाध्य लाख प्रश्नों का एक समाधान वे राम के प्रति प्रेम से देते हैं। सामाजिक सन्दर्भ में इनके राम उदात्त मानवीय मूल्यों के समवाय है।

इस प्रेम की कसौटी अत्यन्त खरी है। वे कहते हैं, 'कबीर यह घर प्रेम का, खाला का घर नाहि'। प्रेम तो सूली ऊपर नट विद्या है, जो आत्म-बलिदान के लिए प्रस्तुत हो, वही इस उदात्त तत्त्व का आनंद भी पा सकता है, किन्तु यह जनवादी व्यवस्था का प्राण तत्त्व है।

कबीर इसी प्रेम के सहारे समूची जनवादी व्यवस्था के खिलाफ गतिशीलता की परिकल्पना करते हैं। वह ऐसे नेता (गुरु) और ऐसे समाज अनुपालनकर्ता, दोनों को फटकारते है, जो अधकचरे एवं अधगामी होते हैं-

'दोनों डूबे धार में, चीड़ पाथर की नाव'

सामाजिक गतिशीलता के लिए कबीर बार-बार बताते हैं कि आत्मसंघर्ष आवश्यक है, जिसके लिए पुरुषार्थ करना आवश्यक है-

'मन रे जागत रहियो भाई,
गफिल होइ खस्तु मत खोई,
चोर मुसै धर जाई॥'

कबीर ने स्वयं आत्मसंघर्ष किया था, जिसका ज्ञान उन्हें भली-भांति था। वह इसकी चरम परिणति और उसका चरम प्रतिफल अद्वैतपरक समाज की प्रतिष्ठा में मानते हैं। अद्वैतपरक व्यवस्था में भेद नाम की चीज नहीं है, जो भेद सभी प्रकार के शोषण का जन्मदाता है। अपने अपेक्षित संसार के बारे में वे कहते हैं–

'सखि वह घर सबसे न्यारा, जहाँ पूरन पुरुष हमारा।'

उक्त विवेचना के सन्दर्भ से हम देख चुके हैं कि जब वे समाज के धार्मिक संगठनात्मक ढाँचे, मानवीय रूढ़ि व मूर्तियों के खिलाफ अपना असंतोष जाहिर कर रहे होते हैं तो उनकी सोच अधिक मुखरित होती है, जन्म से लेकर जीवनपर्यन्त और यहाँ तक कि मृत्यु तक कबीर के अपने जीवन का क्रान्तिकारी तेवर समाज के सन्दर्भ में यथावत् लागू होता है।

समाज का लेकर उनकी गहरी वेदना ही उनके विशुद्ध आध्यात्मिक दर्शन की भी प्रखर जनवादी दर्शन की प्रतिष्ठा करती है। यह उल्लेखनीय तथ्य है कि कबीर के समाज दर्शन की सम्प्रेषणीयता का धरातल पूर्ण यथार्थवादी है, कवि आद्योपान्त जनभाषा का प्रयोग करता है।

उनकी यह भाषिक दृष्टि उनके समाज दर्शन के सन्दर्भ में एक उपलब्धि है। उनकी भाषा में सामाजिक सरकारों से गहरा जुड़ाव लक्षित होता है और कही भी वह भावधारा में इतने नहीं बह जाते हैं कि ठोस, संवेदन धरातल से विचलित हों। उनकी संवेदना का धरातल ठोस है और सशक्त तर्क पद्धति पर आधारित है।

इसी तर्क पद्धति के आधार पर वे अवधूत, पंडित, मुल्ला सभी को चुनौती देते हैं–

'बूझहु मोर गियाना
तू पण्डित मैं काशी का जुलाहा।'

कबीर धर्म को रोटी का माध्यम नहीं बनाते हैं। 'झीनी–झीनी रे बीनी चदरियाँ' में जो आध्यात्मिक स्वरलहरी परिलक्षित होती है वह प्रकारान्तरेण श्रम के प्रति उनकी निष्ठा को उजागर करती है और सार्वजनिक मंत्री–मठाधीशी को चुनौती देती है।

जो अध्यात्म ईश्वर को रोटी का माध्यम बनाकर लोगों को ठगता है वह कबीर को स्वीकार नहीं है। लोक रूपों और प्रतीकों में संवेगात्मक रूप से जो बात सम्प्रेषित करते हैं, उसकी अर्थवत्ता और प्रामाणिकता ऐसा आदर्श इतिहास निर्मित करती है कि कहा जा सकता है कि सदियों बाद कबीर का समाज दर्शन आज भी प्रासंगिक है।

5

कबीर की भाषा शैली

कबीर सन्त कवि और समाज सुधारक थे। उनकी कविता का एक-एक शब्द पाखंडियों के पाखंडवाद और धर्म के नाम पर ढोंग व स्वार्थपूर्ति की निजी दुकानदारियों को ललकारता हुआ आया और असत्य व अन्याय की पोल खोल धज्जियाँ उड़ाता चला गया। कबीर का अनुभूत सत्य अंधविश्वासों पर बारूदी पलीता था। सत्य भी ऐसा, जो आज तक के परिवेश पर सवालिया निशान बन चोट भी करता है और खोट भी निकालता है।

भाषा और शैली

कबीरदास ने बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग किया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है, उसे उसी रूप में कहलवा लिया-बन गया है तो सीधे-सीधे, नहीं दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार-सी नजर आती है। उसमें मानो ऐसी हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवाह फक्कड़ की किसी फरमाइश को नाहीं कर सके। और अकह कहानी को रूप देकर मनोग्राही बना देने की तो जैसी ताकत कबीर की भाषा में है वैसी बहुत ही कम लेखकों में पाई जाती है। असीम-अनंत ब्रह्मानन्द में आत्मा का साक्षीभूत होकर मिलना कुछ वाणी के अगोचर, पकड़ में न आ सकने वाली ही बात है। पर 'बेहद्दी मैदान में रहा कबीरा' में न केवल उस गम्भीर

निगूढ़ तत्त्व को मूर्तिमान कर दिया गया है, बल्कि अपनी फक्कड़ाना प्रकृति की मुहर भी मार दी गई है। वाणी के ऐसे बादशाह को साहित्य-रसिक काव्यानंद का आस्वादन कराने वाला समझें तो उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता। फिर व्यंग्य करने में और चुटकी लेने में भी कबीर अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं जानते। पंडित और काजी, अवधु और जोगिया, मुल्ला और मौलवी-सभी उनके व्यंग्य से तिलमिला जाते थे। अत्यन्त सीधी भाषा में वे ऐसी चोट करते हैं कि खानेवाला केवल धूल झाड़ के चल देने के सिवा और कोई रास्ता नहीं पाता।

इस प्रकार यद्यपि कबीर ने कहीं काव्य लिखने की प्रतिज्ञा नहीं की तथापि उनकी आध्यात्मिक रस की गगरी से छलके हुए रस से काव्य की कटोरी में भी कम रस इकट्ठा नहीं हुआ है। कबीर ने जिन तत्त्वों को अपनी रचना से ध्वनित करना चाहा है, उसके लिए कबीर की भाषा से ज्यादा साफ और जोरदार भाषा की सम्भावना भी नहीं है और जरूरत भी नहीं है। परन्तु कालक्रम से वह भाषा आज के शिक्षित व्यक्ति को दुरूह जान पड़ती है। कबीर ने शास्त्रीय भाषा का अध्ययन नहीं किया था, पर फिर भी उनकी भाषा में परम्परा से चली आई विशेषताएँ वर्तमान हैं। इसका ऐतिहासिक कारण है। इस ऐतिहासिक कारण को जाने बिना उस भाषा को ठीक-ठीक समझना सम्भव नहीं है। इस पुस्तक में उसी ऐतिहासिक परम्परा के अध्ययन का प्रयास है। यह प्रयास पूर्ण रूप से सफल ही हुआ होगा, ऐसा हम कोई दावा नहीं करते, परन्तु वह ग्रहणीय नहीं है, इस बात में लेखक को कोई सन्देह नहीं है।

पंचमेल खिचड़ी भाषा

कबीर की वाणी का अनुकरण नहीं हो सकता। अनुकरण करने की सभी चेष्टाएँ व्यर्थ सिद्ध हुई हैं। इसी व्यक्तित्त्व के कारण कबीर की उक्तियाँ श्रोता को बलपूर्वक आकृष्ट करती हैं। इसी व्यक्तित्त्व के आकर्षण को सहृदय समालोचक सम्भाल नहीं पाता और रीझकर कबीर को 'कवि' कहने में संतोष पाता है।

कबीर की रचनाओं में अनेक भाषाओं के शब्द यथा-अरबी, फारसी, पंजाबी, बुन्देलखंडी, ब्रजभाषा, खड़ीबोली आदि के शब्द मिलते हैं इसलिए इनकी भाषा को 'पंचमेल खिचड़ी' या 'सधुक्कड़ी' भाषा कहा जाता है। प्रसंग क्रम से इसमें कबीरदास की भाषा और शैली समझाने के कार्य से कभी-कभी आगे बढ़ने का साहस किया गया है। जो वाणी के अगोचर है, उसे वाणी के द्वारा

अभिव्यक्त करने की चेष्टा की गई है, जो मन और बुद्धि की पहुँच से परे है, उसे बुद्धि के बल पर समझने की कोशिश की गई है, जो देश और काल की सीमा के परे हैं, उसे दो-चार-दस पृष्ठों में बाँध डालने की साहसिकता दिखाई गई है। कहते हैं, समस्त पुराण और महाभारतीय संहिता लिखने के बाद व्यासदेव ने अत्यन्त अनुताप के साथ कहा था कि 'हे अखिल विश्व के गुरुदेव, आपका कोई रूप नहीं है, फिर भी मैंने ध्यान के द्वारा इन ग्रन्थों में रूप की कल्पना की है, आप अनिर्वचनीय हैं, व्याख्या करके आपके स्वरूप को समझा सकना सम्भव नहीं है, फिर भी मैंने स्तुति के द्वारा व्याख्या करने की कोशिश की है। वाणी के द्वारा प्रकाश करने का प्रयास किया है। तुम समस्त-भुवन-व्याप्त हो, इस ब्रह्माण्ड के प्रत्येक अणु-परमाणु में तुम भिने हुए हो, तथापि तीर्थ-यात्रादि विधान से उस व्यापित्व को खंडित किया है। भला जो सर्वत्र परिव्याप्त है, उसके लिए तीर्थ विशेष में जाने की क्या व्यवस्था? सो हे जगदीश, मेरी बुद्धिगत विकलता के ये तीन अपराध-अरूप की रूपकल्पना, अनिर्वचनीय का स्तुतिनिर्वचन, व्यापी का स्थान-विशेष में निर्देश, तुम क्षमा करो।' क्या व्यास जी के महान् आदर्श का पदानुसरण करके इस लेखक को भी यही कहने की जरूरत है?

रूपं रूपविवर्जितस्य भवतो ध्यानेन यत्कल्पितम्,
स्तुत्या निर्वचनीयताऽखिलगुरोदूरी कृतायन्मया।
व्यापित्वं च निराकृतं भगवतो यत्तीर्थयात्रदिना,
क्षन्तव्यं जगदशी, तद् विकलता-दोषत्रयं मत्कृतम्॥

वृद्धावस्था में यश और कीर्ति ने उन्हें बहुत कष्ट दिया। उसी हालत में उन्होंने बनारस छोड़ा और आत्मनिरीक्षण तथा आत्मपरीक्षण करने के लिये देश के विभिन्न भागों की यात्राएँ कीं। इसी क्रम में वे कालिंजर जिले के पिथौराबाद शहर में पहुँचे। वहाँ रामकृष्ण का छोटा सा मन्दिर था। वहाँ के संत भगवान गोस्वामी जिज्ञासु साधक थे किंतु उनके तर्कों का अभी तक पूरी तरह समाधान नहीं हुआ था। संत कबीर से उनका विचार-विनिमय हुआ। कबीर की एक साखी ने उन के मन पर गहरा असर किया-

बन ते भागा बिहरे पड़ा, करहा अपनी बान।
करहा बेदन कासों कहे, को करहा को जान॥

मूर्ति पूजा को लक्ष्य करते हुए कबीरदास ने कहा है-

पाहन पूजे हरि मिलैं, तो मैं पूजौं पहार।
या ते तो चाकी भली, जासे पीसी खाय संसार॥

रूपातीत व्यंजना और खंडन-मंडन

प्रेम भक्ति को कबीरदास की वाणियों की केन्द्रीय वस्तु न मानने का ही यह परिणाम हुआ है कि अच्छे-अच्छे विद्वान् उन्हें घमंडी, अटपटी वाणी का बोलनहारा, एकेश्वरवाद और अद्वैतवाद के बारीक भेद को न जानने वाला, अहंकारी, अगुण-सगुण-विवेक-अनभिज्ञ आदि कहकर अपने को उनसे अधिक योग्य मानकर संतोष पाते रहे हैं। यह मानी हुई बात है कि जो बात लोक में अहंकार कहलाती है वह भगवत्प्रेम के क्षेत्र में, स्वाधीनभर्तृका नायिका के गर्व की भाँति अपने और प्रिय के प्रति अखंड विश्वास की परिचायक है, जो बात लोक में दब्बूपन और कायरता कहलाती है, वही भगवत्प्रेम के क्षेत्र में भगवान के प्रति भक्त का अनन्य परायण आम्तार्पण होती है और जो बातें लोक में परस्पर विरुद्ध जँचती हैं, भगवान के विषय में उनका विरोध दूर हो जाता है। लोक में ऐसे जीव की कल्पना नहीं की जा सकती जो कर्णहीन होकर भी सब कुछ सुनता हो, चक्षुरहित बना रहकर भी सब कुछ देख सकता हो, वाणीहीन होकर भी वक्ता हो सकता हो, जो छोटे-से-छोटा भी हो और बड़े-से-बड़ा भी, जो एक भी हो और अनेक भी, जो बाहर भी हो भीतर भी, जिसे सबका मालिक भी कहा जा सके और सबका सेवक भी, जिसे सबके ऊपर भी कहा जा सके और सर्वमय सेवक भी, जिसमें समस्त गुणों का आरोप भी किया जा सके और गुणहीनता का भी, और फिर भी जो न इन्द्रिय का विषय हो, न मन का, न बुद्धि का। परन्तु भगवान के लिए सब विशेषण सब देशों के साधक सर्व-भाव से देते रहे हैं। जो भक्त नहीं हैं, जो अनुभव के द्वारा साक्षात्कार किए हुए सत्य में विश्वास नहीं रखते, वे केवल तर्क में उलझकर रह जाते हैं, पर जो भक्त हैं, वे भुजा उठाकर घोषणा करते हैं, 'अगुणहिं-सगुणहिं नहिं कछु भेदा' (तुलसीदास)। परन्तु तर्क परायण व्यक्ति इस कथन के अटपटेपन को वदतो-व्याघात कहकर संतोष कर लेता है।

यदि भक्ति को कबीरदास की वाणियों की केन्द्रीय वस्तु मान लिया जाता तो निस्सन्देह स्वीकार कर लिया जाता कि भक्त के लिए वे सारी बातें बेमतलब हैं, जिन्हें कि विद्वान् लोग बारीक भेद कहकर आनन्द पाया करते हैं। भगवान के अनिवर्चनीय स्वरूप को भक्त ने जैसा कुछ देखा है वह वाणी के प्रकाशन क्षेत्र के बाहर हैं, इसीलिए वाणी नाना प्रकार से परस्पर विरोधी और अविरोधी शब्दों के द्वारा उस परम प्रेममय का रूप निर्देश करने की चेष्टा करती है। भक्त उसकी असमर्थता पर नहीं जाता, वह उसकी रूपातीत व्यंजना को ही देखता है। भक्ति तत्त्व की व्याख्या करते-करते उन्हें उन बाह्याचार के जंजालों को साफ करने की

जरूरत महसूस हुई है, जो अपनी जड़ प्रकृति के कारण विशुद्ध चेतन-तत्त्व की उपलब्धि में बाधक है ! यह बात ही समाज सुधार और सम्प्रदाय ऐक्य की विधात्री बन गई है। पर यहाँ भी यह कह रखना ठीक है कि वह भी फोकट का माल या बाईप्रोडक्ट ही है।

कबीरदास का भक्त रूप

कबीरदास का यह भक्त रूप ही उनका वास्तविक रूप है। इसी केन्द्र के इर्द-गिर्द उनके अन्य रूप स्वयमेव प्रकाशित हो उठे हैं। मुश्किल यह है कि इस केन्द्रीय वस्तु का प्रकाश भाषा की पहुँच से बाहर है। भक्ति कहकर नहीं समझाई जा सकती, वह अनुभव करके आस्वादन की जा सकती है। कबीरदास ने इस बात को हजार तरीके से कहा है। इस भक्ति या भगवान के प्रति अहैतुक अनुराग की बात कहते समय उन्हें ऐसी बहुत सी बातें कहनी पड़ी हैं, जो भक्ति नहीं हैं, पर भक्ति के अनुभव करने में सहायक हैं। मूल वस्तु चूँकि वाणी के अगोचर है, इसलिए केवल वाणी का अध्ययन करने वाले विद्यार्थी को अगर भ्रम में पड़ जाना पड़ा हो तो आश्चर्य की कोई बात नहीं है। वाणी द्वारा उन्होंने उस निगूढ़ अनुभवैकगम्य तत्त्व की ओर इशारा किया है, उसे ध्वनित किया गया है। ऐसा करने के लिए उन्हें भाषा के द्वारा रूप खड़ा करना पड़ा है और अरूप को रूप के द्वारा अभिव्यक्त करने की साधना करनी पड़ी है। काव्यशास्त्र के आचार्य इसे ही कवि की सबसे बड़ी शक्ति बताते हैं। रूप के द्वारा अरूप की व्यजंना, कथन के जरिए अकथ्य का ध्वनन, काव्य-शक्ति का चरम निर्देशन नहीं तो क्या है? फिर भी ध्वनित वस्तु ही प्रधान है, ध्वनित करने की शैली और सामग्री नहीं। इस प्रकार काव्यत्व उनके पदों में फोकट का माल है, बाइप्रोडक्ट है, वह कोलतार और सीरे की भाँति और चीजों को बनाते-बनाते अपने-आप बन गया है।

6

कबीर की सामाजिक चेतना

सामाजिक से हमारा तात्पर्य किसी देश एवं काल विशेष से संबंधित मानव समाज में अभिव्यक्त परिवर्तनशील जागृति से होता है। इसका उद्‌भव सामाजिक अन्याय, अनीति, दुराचार, शोषण की प्रक्रिया से होता है। इसके पीछे सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक परिस्थितियाँ प्रेरक होती हैं। सामाजिक चेतना व्यक्तिमूलक और समाजमूलक दोनों रूपों में रहती है। साहित्य को सामाजिक परिवर्तन मानते हुए साहित्यकार व्यक्तिमूलक और समाजमूलक दोनों स्तरों पर सामाजिक चेतना का अनुसरण करता है।

कबीर की सामाजिक चेतना के संदर्भ में पहली धारणा ये बनती है कि वे समाज सुधारक थे। वस्तुतः कबीर बाह्याडम्बर, मिथ्याचार एवं कर्मकांड के विरोधी थे। परन्तु सामाजिक मान्यताओं का विरोध करते समय वे सर्व-निषेधात्मक मुद्रा कभी नहीं अपनाते थे। कबीर अपने समय में प्रचलित हठयोग की साधना, वैष्णव मत, इस्लाम तथा अनेक प्रकार की साधना पद्धतियों से परिचित थे। उन्होंने सबकी आलोचना की, किन्तु उनका सारतत्त्व समाहित किया। एक भक्त के रूप में उन्होंने शुष्क ज्ञान साधना से आगे बढ़कर संसार के साथ भावनात्मक संबंध स्थापित किया। उन्हें मानव समाज की विषमताओं से पीड़ित होने और समाज को उबारने की छटपटाहट भी प्रदान की। कबीर की सामाजिक चेतना उनकी भक्ति भावना का ही एक पक्ष है।

कबीर की सामाजिक चेतना का श्रेय उन युगीन परिस्थितियों को है, जिनके बीच वे पैदा हुए और रहे। वे परिस्थितियाँ जीवन के सभी क्षेत्रों में भयावह अव्यवस्था, विषमता और अंधविश्वास की परिस्थितियाँ थी। **पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी** के अनुसार कबीर ने ऐसी बहुत सी बातें कही हैं जिन्हें अगर उपयोग किया जाये तो समाज-सुधार में सहायता मिल सकती है, पर इसीलिए उनको समाज-सुधारक समझना गलती है। वस्तुत: वे व्यक्तिगत साधना के प्रचारक थे। कबीर एक आध्यात्मिक पुरुष थे। उनका सारा जीवन ईश्वर की उपासना में बीता था। भक्ति समझ लाती है, सहानुभूति लाती है और तब आप दूसरे धर्म, दूसरी विचारधारा का हिस्सा बनते हैं। इसके अतिरिक्त स्वयं उनके जैसा नहीं बन जाते वरन् उस धर्म या विचारधारा के प्रति एक समझ पैदा करते हैं। प्रेम, समर्पण, त्याग पर ही यह भक्ति सिद्ध हो सकती है-

कबीर सौदा राम सौं, सिर बिन कदै न होय।

प्रेम भक्ति है-

कबीर निज अधर प्रेम का मारग अगम अगाध।
सीस उतारि पगतलि धरैए तब निकटि प्रेम का संवाद॥

एक और बात जो कबीर की सामाजिक चेतना के संदर्भ में महत्वपूर्ण है, वह यह कि कबीर के अनुसार सारे धर्म अंतत: एक हैं। उनके बीच विविधता या अलगाव की भावना के स्थान पर कबीर समन्वय स्थापित करने की बात कहते हैं। समन्वय का अर्थ है कि हम मनुष्य की मूल एकता को स्वीकार करें और उस विशाल मानवतावादी दृष्टि को अपनाएँ जो समग्र मनुष्य जाति को सामूहिक रूप से अनेक प्रकार की कुसंस्कार और अभावों के बंधन से मुक्त करके उसे जीवन की उच्चतर चरितार्थता की ओर ले जाने का प्रयास करती है। कबीर ने समस्त बाह्याचारों को छोड़कर साधारण मनुष्य की तरह आचरण करने और भगवान को 'निरपख' भगवान के पद पर स्थापित करने की साधना की थी। इसीलिए वे वेद और कुरान से भी आगे बढ़कर कहते हैं-

गगन गरजै तहाँ सदा पावस झरे, होत
झनकार नित बजत तूरा।
वेद-कत्तेब की गम्म नाहीं-तहाँ रहै
कबीर कोई रमै सूरा।।

यह धर्म निरपेक्षता नहीं धर्म को ठीक से समझना है। बाह्याचारों, व्यर्थ का कुलाभिमान, अकारण ऊँच-नीच की प्रतिक्रियात्मक भावनाओं से समन्वय और

समरसता की ओर गतिशील होना ही उचित है। **इन्द्रनाथ चौधरी** के अनुसार "कबीर ने बाजार में खड़े होकर हिंदू धर्म और मुस्लिम मजहब के तादाम्य की कोशिश नहीं की थी बल्कि इन दोनों सम्प्रदायों के बीच की संपूरक स्थिति को समझाने और उसके प्रसार की बात की थी। राम-रहीम की एकता की बात नहीं, अद्वैत ब्रह्म और पैंगबरी खुदा को मिलाने की बात भी नहीं, वरन् किस तरह यह दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, उसका उल्लेख किया और बिना किसी संकोच के दोनों सम्प्रदायों के बीच फैले हुए कट्टरवाद का विरोध करते हुए इन दोनों धर्मों के उन तत्त्वों को उजागर करने का प्रयत्न किया जिससे एक दूसरे को समझने में आसानी हो और विभिन्नता के बावजूद सौहार्द्र का प्रसाद हो सके। यह दृष्टिकोण उन्हें विभिन्न-दर्शनग्राही एकेश्वरवादी कबीर बनाता है।"

कबीर के अनुसार यह सारा व्यक्त जगत एक ही तत्त्व से उत्पन्न हुआ है। इसलिए मानव-मानव में किसी प्रकार का भेद देखना अज्ञान का द्योतक है। इसीलिए अपनी रचनाओं में कबीर ने जाति-पाँति, छुआ-छूत, ऊँच-नीच और ब्राह्मण-शूद्र के भेद का विरोध किया है। परन्तु इस विचारधारा के पीछे भी आध्यात्मिक सत्य ही है। कबीर का कहना है-

एकहि जोति सकल कपट व्यापक दूजा तत्त्व न होई।

परमात्मा ने एक ही बूँद से सारी सृष्टि रची है, फिर ब्राह्मण और शूद्र का भेद क्यों? एक ही नूर से सारा संसार रचा गया है ना कोई भला है न कोई मंदा-

एक बूँद तैं सृष्टि रची है कौन ब्राहमण कौन सूदा,
एक नूर तैं सब जग कीआ कौन भले को मंदो।

धर्म तथा आचार-व्यवहार से जुड़े बाह्याडम्बरों के प्रति कबीर की कोई आस्था नहीं थी। इन सभी को कबीर ने ढोंग माना और उनकी तीखी आलोचना की। कारण यही था कि ये सभी बाह्याडंबर भेदभाव, ऊँच-नीच की भावना को अभिव्यक्त करते हैं। समाज में अलगाव की भावना उत्पन्न करने वाली इस प्रकार की सभी गतिविधियों की कबीर ने आलोचना की है। उन्होंने सहज सात्विक जीवन-पद्धति को महत्व दिया है। हिन्दु-मुस्लिम दोनों को आड़े हाथ लेते हुए कबीर कहते हैं-

पाहन पूजे हरि मिलें तो मैं पूजूँ पहार।
तासे या चाकी भली पीस खाये संसार॥
कांकर-पाथर जोरि के मस्जिद लई चिनाय।
ता चढ़ मुल्ला बाँग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय॥

धार्मिक और सामाजिक आधार पर खंड-खंड होते समाज को देखकर ही कबीर ने इस तरह की बात कही थी। वस्तुतः 15वीं शताब्दी में सामाजिक स्थिति अत्यन्त अव्यवस्थित थी, इस विषम स्थिति ने समाज को नैतिक दृष्टि से जर्जर बना दिया था। इसीलिए अनुभूति सम्पन्न कवि और सन्त होते हुए भी कबीर सामाजिक उथल-पुथल से तटस्थ नहीं रह पाये।

उस समय सामन्ती चेतना पूरे उभार पर थी। धन-संपत्ति, सोना-चाँदी और कामिनी या सुंदरी इन सबके प्रति एक विशेष आकर्षण समाज में था। सामान्य और गरीब जनता अभावग्रस्त थी परन्तु योग विलास में डूबे शासकों और सुविधा संपन्न वर्गों का इस ओर कोई ध्यान नहीं था। इन परिस्थितियों में समाज दया, ममता, प्रेम जैसे उदारचेता विचारों को छोड़कर विलासिता, लालच, हिंसा की ओर बढ़कर पतनोन्मुख हो रहा था। कबीर ने इन सभी सामाजिक बुराइयों पर तीखा प्रहार किया है। जैसे-

एक कनक अरू कामिनी, बिरव फल किया उपाइ।
देखें ही तैं बिख चढ़ै, खाए तै मरि जाई।।

इस भाँति कबीर ने समाज को तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार जैसा पाया, अपनी रचनाओं में उसी सत्य को उन्होंने वाणी दी। कबीर की संवेदनशील और पैनी दृष्टि से समाज की कोई गतिविधि छिपी नहीं रह सकती थीं। उन्होंने उस सामाजिक अव्यवस्था का खुलकर विरोध किया। कबीर के सभी भेदभावों का विरोध करते हुए सामाजिक एकता और समता का प्रतिपादन किया।

संत कबीर निर्गुण मत के अनुयायी कवि हैं। भक्ति काल में निर्गुण भक्तों में कबीर को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। हिन्दी साहित्य में कबीर के योगदान को नकारा कबीर मनुष्य को समझाते हुए कहते हैं कि यह मनुष्य जीवन क्षण-भर के लिए है। इस पर हमें घमण्ड नहीं करना चाहिए। यह तो पानी के बुलबुले के समान पल में नष्ट हो जाएगा। हमें इसे अच्छे कर्मों में लगाना चाहिए।

पानी केरा बुदबुदा, उस मानस की जाति।
एक दिनाँ छिप जाता है, जो तारा प्रभात।

कबीर ने समाज में व्याप्त जाँति-पाँति व ऊँच-नीच की भी कड़े शब्दों में निंदा की है। वे मनुष्य के ज्ञान व कर्म को महान मानते हुए कहते हैं -

जाँति न पूछो साधु की पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का पड़ा रहने दो म्यान।

कबीर ने गुरू को बहुत महत्व दिया है। उनकी अहम् प्रेरणा का मूल स्रोत उनके गुरू ही थे, जिनकी कृपा से उन्होंने सभी संकीर्ण बन्धनों को तोड़ा, वे स्वतन्त्र-चिन्तक, उन्होंने बहुत-सी ज्ञानपूर्ण सच्चाईयों को सामान्य जन तक पहुँचाया, आत्म-ज्ञान प्राप्त करना, मूल सत्य से परिचित होना, इस सब कार्यों की प्रेरणा देने वाले उनके गुरू ही थे। वही इस मार्ग को बताने वाले थे।

सतगुर की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार,
लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावण हार॥
सतगुरू हमसे रीझकर, एक कहा परसंग।
बरसा बादल प्रेम का, भीज गया सब अंग।

कबीर जी नाथ योग से प्रभावित थे। इसी कारण उन्होंने नारी को माया स्वरूप माना है तथा साथ ही उन्होंने पतिव्रता नारी की भूरी-भूरी प्रशंसा भी की है।

" पतिव्रता मैली भली, काली कुचित कुरूप।
वाकै एके रूप पर, वारूं कोटि स्वरूप॥"

कबीर ने उच्चता और नीचता का संबंध व्यवसाय के साथ नहीं जोड़ा है क्योंकि कोई व्यवसाय नीचा नहीं है। अपने को जुलाहा कहने में भी उन्होंने कहीं संकोच नहीं किया और वे स्वयं भी जीवनभर ये काम करते रहते। वे उन ज्ञानियों में से नहीं थे जो हाथ पांव समेट कर पेट भरने के लिए समाज के ऊपर भार बनकर रहते हैं। वे परिश्रम का महत्व जानते थे और आजीविका के लिए ही जुलाहे का काम करते रहे।

कबीर जी धन सम्पत्ति जोड़ना भी उचित नहीं समझते थे। उन्होंने थोड़े में ही संतोष करने का उपदेश दिया है। कबीर जी ने आगे की पीढ़ी के लिए भी धन का संचय न करने का उपदेश दिया है-क्योंकि वे जानते थे कि अगर संतान अच्छी व संस्कारी है तो उसके लिए धन की जरूरत नहीं है। अगर संतान आलसी है तो वह सारे संचित धन को बेकार में व्यर्थ कर देगी। इसलिए कबीर ने कहा है -

पूत कपूत तो क्यों धन संचय
पूत सपूत तो क्यों धन संचय।

कबीरदास जी ने सुकर्म के साथ-साथ लोगों को उद्यम करने का भी उपदेश दिया है जिससे आर्थिक तंगी से निपटा जा सके और पेट भरने के लिए किसी दूसरे पर निर्भर ना रहें।

परिश्रम करने की शिक्षा देने का कबीर जी का मकसद गरीबों की गरीबी दूर करना तो था ही, साथ में देश व समाज की उन्नति करने से भी था। इसलिए कबीर कहते थे –

''कबीर उद्यम अवगुण को नहीं, जो करि जाने कोय।
उद्यम में आनन्द है, सांई सेती होय॥"

उन्होंने जीवन को क्षण भंगुर बता कर, लोगों को भक्ति और मानव सेवा का फल प्राप्त करने व साथ ही मनुष्य को दुष्कर्म करने के प्रति भी सचेत किया है।

"पानी केरा बुदबुदा, अस मानुस की नात,
एक दिना छिप जाएगा, ज्यों तारा परभात।"

इसमें कबीर ने मनुष्य के शरीर को क्षण भंगुर कहा है कि जिस प्रकार पानी का बुलबुला क्षण में ही नष्ट हो जाता है उसी प्रकार मनुष्य शरीर भी पल में नष्ट हो जाएगा। इसलिए हमें अच्छे कर्म करने चाहिए।

डॉ. पारसनाथ तिवारी लिखते हैं " सच्ची बात यह है कि हिन्दी साहित्य में कबीर से बड़ा मानवतावादी कोई नहीं हुआ। उन्होंने तत्कालीन भारतीय समाज में प्रचलित समस्त अंधविश्वासों, रूढ़ियों तथा मिथ्या सिद्धान्तों द्वारा प्रचारित सामाजिक विषमताओं का मूलोच्छेद करने का बीड़ा उठाया और निर्भयता पूर्वक पाखंडों पर प्रहार किया। "

उनकी सबसे बड़ी विशेषता एकत्व की भावना का समर्थन है। **डॉ. रामजीलाल** के अनुसार – " कबीर ने सामाजिक विषमता को मिटाकर एकत्व की स्थापना का निश्चय किया। कबीर को प्रगतिशील कहने में हमें कोई संकोच नहीं होना चाहिए। पाँच सौ-छः सौ वर्ष पूर्व कही गई बात आज भी प्रासंगिक व सम-सामयिक है। " कबीर ने व्यक्ति व समाज को एक दूसरे का पूरक माना है। इस तरह से कबीर भक्त, योगी व दार्शनिक होने के साथ-साथ समाज सुधारक भी थे। कबीर ने समाज सुधार के लिए प्रबल प्रयत्न कर तत्कालीन समाज को अंधकार से निकालने का भरसक प्रयास किया।

इस तरह से कबीर ने जीवन के सभी पहलुओं में झांका है। उनकी वाणियों में सम्पूर्ण जीव जगत के लिए कल्याण का मार्ग झलकता था, जो आज भी समाज के लिए दर्पण का काम करता है। कबीरदास का जीवन, मानवीय गुणों से ओत-प्रोत था, वे सभी जीवों को समदृष्टि से देखते थे, किसी व्यक्ति विशेष की न तो कभी निन्दा करते थे और न ही स्तुति। वे उस व्यक्ति व समाज की

बुराईयों की खुलकर निंदा करते थे, जिनमें उनको आडम्बर, पाखण्ड व ढोंग नजर आता था, ऐसे में वो खुलकर बोलते थे –

हिन्दू के दया नहीं, मेहर तुरक के नाहिं।
कहें कबीर दोनों गए, लख चौरासी माहिं॥

कबीर लोक कल्याणकारी भावना के प्रबल समर्थक थे। वे अहंकारियों का विरोध कर निम्न वर्गीय लोगों के पक्षधर थे। वे कहते हैं –

दुर्बल को न सताइये, जाकी मोटी हाय।
मुई खाल की सांस सो, लोह भसम हो जाय॥

कबीर जी स्वयं एक गृहस्थ थे, इसलिए वे गृहस्थ व वैरागी दोनों को समान आदर देते थे –

बैरागी विरक्त भला, गिरही चित्त उदार।
दूहूं चूका रीता पड़े, ताकूं बार न पार॥

कबीर जी पूरे विश्व को एक कुटुम्ब मानते हैं। इसलिए वे पूरे विश्व का ही सुधार चाहते हैं –

" सीलवन्त सबसे बड़ा, सर्व रतन की खानि
तीन लोक की संपदा, रही सील में आनि॥"

अतः हम कह सकते हैं कि कबीर अपने समय एवं समाज के कटु आलोचक ही नहीं समाज को लेकर स्वप्न द्रष्टा भी थे। उनके मन में भारतीय समाज का एक प्रारूप था जिस पर वे एक विजन के साथ काम कर रहे थे। " वे मुसलमान होकर भी असल में मुसलमान नहीं थे। वे हिन्दू होकर भी हिन्दू नहीं थे। साधु होकर भी योगी नहीं थे, वे वैष्णव होकर भी वैष्णव नहीं थे। "

इस प्रकार कबीर का अपने समाज के प्रति दृष्टिकोण वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित था, वो किसी प्रकार के बाह्य आडंबर तथा शोषण के खिलाफ खड़े थे। इस संदर्भ में हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा भी है कि " कबीरदास ऐसे ही मिलन बिन्दु पर खड़े थे, जहाँ एक ओर हिन्दुत्व निकल जाता था, दूसरी ओर मुसलमान, जहाँ एक ओर ज्ञान निकल जाता है, दूसरी ओर अशिवा, जहाँ एक ओर ज्ञान भक्ति मार्ग निकल जाता है, दूसी ओर योगमार्ग, जहाँ एक ओर निर्गुण भावना निकल जाती है, दूसरी ओर सगुण साधना। उसी प्रशस्त चौराहे पर वे खड़े थे। वे दोनों को देख सकते थे और परस्पर विरुद्ध दिशा में गये मार्गों के गुण दोष उन्हें स्पष्ट दिखाई दे जाते थे। "

कबीर की सामाजिक चेतना के आयाम

कबीर का जन्म ऐसे समय में हुआ जब समाज अनेक बुराइयों से ग्रस्त था। उस समय किसी ऐसे महात्मा या समाज सुधारक की आवश्यकता थी जो समाज में व्याप्त बुराइयों पर निर्भीकता से प्रहार कर सके, धर्मों के अनुयायियों को बिना किसी भेदभाव के फटकार सके और सदाचार का उपदेश देकर सामाजिक समरसता की स्थापना करे। कबीर इन आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। उल्लेखनीय है कि उनमें हिन्दु और इस्लाम की रुढ़ियों, संकीर्णताओं और कट्टरताओं के विरुद्ध खड़े होने की जैसी दृढ़ता थी, वैसी ही सच को कहने की निर्भीकता भी थी। उन्होंने कहा था–

''साँच ही कहत और साँच ही गहत है,
काँच कू त्याग कर साँच लागा।
कहै कबीर यूँ भक्त निर्भय हुआ।
जन्म और मरन का मर्म भागा। '' 1

कबीर की सामाजिक चेतना या समाज सुधारक व्यक्तित्त्व पर विचार करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि क्या मध्यकालीन सामाजिक व्यवस्था से जुड़ी हुई समस्याओं को धार्मिक तथा राजनीतिक समस्या से बिल्कुल अलग करके देखा जा सकता है। एक क्षण के लिए मध्यकालीन या कबीर कालीन समाज को दरकिनार करके अपने आधुनिक समाज को देख लिया जाए तो बात कुछ अधिक साफ ढंग से समझ में आ जायेगी। आज के समाज की अनेक समस्याओं में से सबसे बड़ी और प्रमुख समस्या है धार्मिक कट्टरपन। इसी धार्मिक कट्टरता या साम्प्रदायिकता के कारण एक आदमी दूसरे आदमी के खून का प्यासा बन जाता है जिसके कारण समाज में व्यक्तियों का सह अस्तित्त्व ही खतरे में पड़ जाता है, जो सामाजिक संगठन की मूलभूत आवश्यकता है।

जहाँ तक कबीर के समाज सुधारक होने का प्रश्न है, यह निर्विवाद सत्य है कि वे बुद्ध, गाँधी, अम्बेडकर इत्यादि क्रांतिकारी समाज सुधारकों की परम्परा में शामिल होते हैं। एक महान समाज सुधारक की मूल पहचान यह है कि वह अपने युग की विसंगतियों की पहचान करे, एक मौलिक व समयानुकूल जीवन दृष्टि प्रस्तावित करें और इस जीवन दृष्टि को स्थापित करने के लिए हर प्रकार के भय और लालच से मुक्त होकर दृढ़तापूर्वक संघर्ष करे। कबीर के व्यक्तित्त्व का विश्लेषण करें तो हम समझ सकते हैं कि वे जिस सामंतवादी युग में थे वह सामाजिक दृष्टि से अपकर्ष का काल था। विलासिता जैसे मूल्य समाज में फैले

हुए थे। नारी को भोग की वस्तु माना जाता था। वर्णव्यवस्था और साम्प्रदायिकता ने मानव समाज को खंडित किया था। धर्म का आडम्बरकारी रूप वास्तविक धार्मिकता को निगल चुका था और भाषा से लेकर जीवन शैली तक एक प्रकार का आभिजात्य उच्च वर्गों की मानसिकता में बैठा हुआ था। ऐसे समय में कबीर ने मानव मात्र की एकता का सवाल उठाया और स्पष्ट घोषणा की कि ''साईं के सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोय।'' वे समाज के प्रति अति संवेदनशीलता से भरे रहे क्योंकि 'सुखिया' संसार खाता और सोता रहा जबकि संसार की वास्तविकता समझकर 'दुखिया' कबीर जागते और रोते रहे। यह निम्नलिखित पंक्ति से स्पष्ट हो जाता है–

सुखिया सब संसार है, खावै अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै।

यह संवेदनशीलता निष्क्रिय नहीं थी, बल्कि इतनी ज्यादा दृढ़ता और आत्मविश्वास से भरी थी कि बेहतर समाज के निर्माण के लिए कबीर अपना घर फूँकने को पूर्णतः तैयार थे–

''हम घर जारा आपना, लिया मुराड़ा हाथ।
अब घर जारौं तासु का, जो चलै हमारे साथ।।''

कबीर के समाज के प्रति यही दृष्टिकोण वर्णव्यवस्था, साम्प्रदायिकता, भाषाई आभिजात्य और धार्मिक आडम्बरों के कठोर खंडन में साफ दिखाई पड़ता है। उल्लेखनीय है कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था को धार्मिक व्यवस्था से बहुत अलग करके नहीं देखा जा सकता है। जहाँ जाति–भेद, वर्ण–भेद धार्मिक व्यवस्था का ही परिणाम है, जहाँ पति–पत्नी का सम्बन्ध आध्यात्मिक बन्धन है, जहाँ व्यक्ति, परिवार और समाज के पारस्परिक सम्बन्धों का मूलाधार धर्म हैं, वहाँ सामाजिकता धार्मिकता से अलग कैसे हो सकती है। ब्राह्मण छुआछूत को इसलिए बढ़ावा देता है कि वह इसे अपना धर्म मानता है। यही नहीं एक बधिक जानवरों का वध इसलिए करता है कि यह उसका धर्म (ईश्वर द्वारा निर्धारित कार्य) है। शूद्रों को सभी वर्गों की सेवा इसलिए करनी चाहिए कि ईश्वर ने उसे इसी के लिए पृथ्वी पर भेजा है। जिस देश में गरीबी–अमीरी, सुख–दुख, जाति–पाति, ऊँच–नीच सभी कुछ ईश्वर की इच्छा से निर्धारित है उस देश में यदि किसी भी तरह का सामाजिक परिवर्तन लाना है तो उसके लिए धार्मिक परिवर्तन की दिशा में ही प्रयत्न करना होगा। आज के बौद्धिक तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उपर्युक्त बातें आधारहीन भले ही हों किंतु मध्ययुगीन परिप्रेक्ष्य में

ये शत-प्रतिशत सत्य हैं। कबीर जैसा ओजस्वी तथा विद्रोही रचनाकार जब इस तरह का भाव व्यक्त कर सकता है तो भ्रम की गुंजाइश कहाँ रह जाती है-

पूरब जनम हम बाभन होते ओछे करम तप हीना।
रामदेव की सेवा चूका पकरि जुलाहा कीना॥

इसलिए यह कहना कि कबीर का व्यक्तित्त्व मुख्यत: भक्त है, समाज सुधार उनके लिए गौण है, समीचीन नहीं है कि कबीर जिस तरह के भक्त हैं वह स्वयं में ही एक नवीन सामाजिक पद्धति एवं मानवीय समता की स्वीकृति तथा पक्षधरता का प्रमाण है। यह भक्ति मार्ग ऐसा है जहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र का अलगाव नहीं है, सभी एक हैं और केवल मनुष्य हैं। यदि इनकी कोई उपाधि है, तो वह भी एक ही है, जो है संत या भक्त। इस साधना में ब्राह्मणों का वर्चस्व नहीं है। ब्राह्मण के महत्व को अस्वीकार करना, सभी वर्गों के लिए एक नये आध्यात्मिक मार्ग की खोज करना, वेद, शास्त्रों में प्रतिपादित उन मान्यताओं को अस्वीकार करना, जो ब्राह्मणों के महत्व को स्वीकार करती है आदि युग-युग से निर्मित सामाजिक व्यवस्था पर गहरी चोट है- ''शास्त्र और सम्प्रदायों का निषेध करके कबीर केवल एक नयी भक्ति पद्धति को ही नहीं जन्म दे रहे थे बल्कि ढोल पीट-पीटकर जता रहे थे कि मुक्ति का मार्ग ब्राह्मण के घर से होकर नहीं जाता- जैसा कि युगों-युगों से प्रचारित किया जा रहा है। ब्राह्मण, वेद तथा वेद मार्ग के महत्व को अस्वीकार करके कबीर ने वस्तुत: सामंती व्यवस्था के मर्म पर आघात किया था। उनके भक्त रूप को महत्व देना, प्रकारांतर से उनके सामाजिक विद्रोह को हाशिये में डालना है।''

चूँकि सामाजिक व्यवस्था से जुड़े हुए अनेक मुद्दों के संदर्भ में धर्म की दुहाई दी जाती थी, इसीलिए कबीर ने उनका विरोध करने के लिए धर्म की ही व्यवस्था में से तर्क ढूंढने का प्रयत्न किया। जाति-पांति, छुआ-छूत और ऊँच-नीच के भेद-भाव को समाप्त करने के लिए उन्होंने आध्यात्मिक तथा दार्शनिक मान्यताओं का आधार ग्रहण किया। भारतीय दर्शन का बहुविख्यात सिद्धान्त अद्वैतवाद तत्त्वत: ब्रह्म की सत्ता को सत्य और शेष को असत्य मानता है। कबीर ने दर्शन के इस सूत्र का सामाजिक समता के लिए उपयोग किया। जब एक ही तत्त्व सर्वत्र सब घट में व्याप्त है तो भेद-भाव कहाँ से पैदा हो जाता है-

एकहि जोत सकल घट व्यापक, दूजा तत्त्व न होई।
कहै कबीर सुनौ रे संतो, भटकि मरै जनि कोई॥

कबीर ने परिस्थितियों के अभिशाप से धर्म को बचाने के लिए विश्व-धर्म की रूपरेखा प्रस्तुत की। उन्होंने घोषणा की कि सबका ईश्वर एक ही है। मुसलमान और हिन्दू भले ही विविध नामों से अपने ईश्वर को पुकारे तथापि उनके ईश्वर में किसी भी प्रकार की भिन्नता नहीं है। सत्य एक है, भले ही संप्रदाय अनेक हों। उन्होंने कहा

हम तो एक-एक कर जाना।
दोय कहैं तिनको है दो जग, जिन नाहीं पहिचाना।।
एकै पवन एक ही पानी एक ज्योति संसारा।
एक ही खाक घड़े सब भांडे, एक ही सिरजन हारा।।

कबीरदास ने यह भी अनुभव किया था कि जाति व्यवस्था को अगर शिथिल न किया जाएगा, तो धर्म की रक्षा संभव न हो सकेगी। इसलिए जाति बंधन की परंपरा तोड़ने के लिए उन्होंने अभूतपूर्व प्रयत्न किया।

''जाति-पाति पूछै नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि का कोई'' 8

धर्म को सशक्त और सुसंगठित किया। जाति भेद की संकीर्णता जिस हद तक पहुँच गयी थी, उसका स्पष्ट संकेत कबीर की रचनाओं में मिलता है।

तुम कत् बाम्हन हमकत सूद।
हम कत् लोहू तुम कत् दूध।।
कह कबीर जे ब्रह्म विचारे।
सो ब्रह्मा कहियतु है हमारे।।

इसी प्रकार कबीर ने हिन्दू-मुसलमानों दोनों के पाखण्डों का खण्डन किया तथा उन्हें सच्चे मानव-धर्म को अपनाने के लिए प्रेरित किया। कबीर ने दोनों को कसकर फटकारा जो इस प्रकार है-

''अरे इन दोऊन राह न पाई।
हिन्दू अपनी करे बड़ाई, गागर छुअन न देई।
वेश्या के पायन तर सोयै, यह देखो हिन्दुआई।
मुसलमान के पीर-औलिया, मुर्गी-मुर्गा खाई।
खाला के घर बेटी ब्याहै, घर ही में करैं सगाई।''

कबीर मूर्तिपूजा के घोर विरोधी थे। वे मानते थे जिस परमात्मा का कोई आकार नहीं, देशकाल का जिसके लिए कोई आधार नहीं, उसकी मूर्ति कैसी? अतः मूर्तिपूजक हिन्दुओं को फटकारते हुए वे कहते हैं-

''पाहन पूजे हरि मिलै तो मैं पूजूँ पहार।
ताते यह चक्की भली पीस खाय संसार॥''

कबीर की तर्कवादी सोच का एक पहलू उनके आडंबर विरोधी नजरिये में दिखता है। वे मध्यकाल के संत थे, इसलिए ईश्वर में उनकी गहरी आस्था थी। किंतु अपनी सहज तार्किकता से वे समझते थे कि ईश्वर, जो अपने आप में पूर्ण है, किसी भी प्राणी से यह अपेक्षा नहीं रखता होगा कि वह उसके नाम पर बलि चढ़ाए, तीर्थाटन या कर्मकांड करे। अपनी इसी तार्किकता के चलते उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों में प्रचलित आडम्बरों पर करारा प्रहार किया। उन्होंने देखा कि हिन्दुओं में मुंडन कराने की प्रथा प्रचंड रूप में विद्यमान है। विशेष रूप से मंदिरों और मठों में ईश्वर के साधक इस लालच में गंजे हो जाते थे कि इस परंपरा पर चलकर स्वर्ग तथा ईश्वर की उपलब्धि कुछ आसान हो जाएगी। कबीरदास ने इस अतार्किक परंपरा पर जबरदस्त व्यंग्य करते हुए कहा–

''मूंड मुड़ाए हरि मिले, सब कोइ लेय मुड़ाय।
बार बार के मूंडते, भेड़ न बैकुण्ठ जाय॥''

कबीर हमें कुछ अन्य मामलों में भी नैतिक सलाह देते हैं और उनकी अधिकांश नैतिक सलाहें आज भी हमारे काम की हैं। उदाहरण के लिए, एक दोहे में उन्होंने संदेश दिया है, जो आज के उपभोक्तावादी समाज के लिए बेहद उपयोगी है–

''साईं उतना दीजिए, जामे कुटुम समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाए।''

कबीर ने अहिंसा की बात भी अत्यंत गहराई के साथ रखी है। उन्होंने महावीर और बुद्ध की परंपरा के अलावा वैष्णव परंपरा से भी अहिंसा का सिद्धान्त सीखा और निजी जीवन में इसका उपयोग भी किया। उनका कथन है कि ''साईं के सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोय।''

कबीर की सलाह है कि व्यक्ति को दूसरों से बातचीत के लिए विनम्र भाषा का इस्तेमाल करना चाहिए। वे इस बात को समझते थे कि अधिकांश झगड़े भाषा की असावधानियों के कारण ही जन्म लेते हैं, न कि वैचारिक या मानसिक वैपरीत्य के कारण। इसलिए उन्होंने स्पष्ट सलाह दी कि–

ऐसी बानी बोलिए, मन का आपा खोय।
और को सीतल करे, आपहु सीतल होय।

कबीर हमें आत्म-आलोचना करना भी सिखाते हैं आमतौर पर हमारी आदत होती है कि हम दूसरों की कमियाँ और अपनी अच्छाइयाँ तुरंत देख लेते हैं। कहा भी जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने मामले में सबसे अच्छा वकील होता है और दूसरों के मामले में सबसे बुरा जज। कबीर हमें इस निम्न मानसिकता से मुक्त कराना चाहते हैं। वे सिखाते हैं कि दूसरों पर कठोर कसौटियों का प्रयोग करने की बजाय खुद पर उनका इस्तेमाल करना चाहिए और अपनी कमियों को ईमानदारी से स्वीकार करने का हौंसला रखना चाहिए। एक कथन में वे बड़ी ईमानदारी से स्वीकार करते हैं कि–

''बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलया कोय।
जो दिल खोजो आपना, मुझसे बुरा न कोय।''

किसी भी व्यक्ति के विचार इतने पूर्ण नहीं होते कि उन पर सवाल न उठाए जा सकें। कबीर भी पूर्ण नहीं है। उनके विचारों में कुछ ऐसे पक्ष मौजूद हैं जिन्हें पढ़कर चिंता होती है। उनके समय में तो उन कमियों पर ज्यादा चर्चा नहीं हुई पर आधुनिक काल में, जब हर विचारक कई विचारधाराओं की कसौटियों से परखा जाने लगा है, कबीर की कमजोरी भी खुलकर सामने आने लगी है।

कबीर की चेतना पर सबसे गंभीर प्रश्नचिन्ह नारीवादी विचारकों द्वारा लगाया गया है। कबीर के कई ऐसे पद हैं जिनमें वे नारी की अनावश्यक निंदा करते हुए नजर आते हैं। दरअसल, वे मध्यकाल की जिस परंपरा में दीक्षित थे, उसमें महिलाओं को 'माया' समझा जाता था और उन पर आरोप था कि वे पुरुषों का ध्यान भटकाने में लगी रहती हैं। समझ नहीं आता कि कबीर जैसा महातार्किक आदमी ऐसे बेवकूफाना विचारों से कैसे प्रभावित हो गया? आज यह सोचकर आश्चर्य होता है कि कबीरदास ने महिलाओं को कितना-बुरा भला कहा है। उदाहरण के लिए, वे एक दोहे में कहते हैं कि–

नारी की झाई पड़त, अंधा होत भुजंग।
कबिरा तिनकी कौन गति, जे नित नारी के संग।।

कबीर की दूसरी सीमा यह है कि वे सबको विनम्र भाषा का प्रयोग करने की सलाह देते हैं, किंतु खुद इतनी आक्रामक भाषा का प्रयोग करते हैं कि सुनने वाला तिलमिला जाए। यह अंतर्विरोध हर जगह तो नहीं दिखता, किन्तु कबीर के कुछ कथनों में जरूर झलकता है– विशेषत: वहाँ, जहाँ वे किसी मुल्ले या पंडे पर आडम्बरों या जातिवादी व्यवहार के कारण प्रहार कर रहे होते हैं। कुछ लोग

का मानना है कि इस गुस्से और आक्रामकता के कारण ही कबीर 'कबीर' बन सके।

कबीर की तीसरी सीमा यह है कि वे इस जगत को झूठा घोषित करते हैं। दरअसल, वे शंकराचार्य से प्रभावित थे जिन्होंने सम्पूर्ण जगत को मिथ्या कहा था। कबीरदास भी कई स्थानों पर इहलोक को झूठा साबित करते हैं। उदाहरण के लिए, उनका एक कथन है–

यह संसार कागद की पुड़िया, बूंद पड़े धुलि जाना है।

कबीर के समय तो यह दृष्टिकोण चल जाता था पर आज नहीं चल पाता। वर्तमान विश्व के अधिकांश लोग सैद्धांतिक तौर पर चाहे मानें या नहीं, पर व्यवहारिक तौर पर समझ चुके हैं कि यह दुनिया ही वास्तविक और अंतिम दुनिया है, इसलिए इसे झूठा मानना और किसी काल्पनिक दुनिया के सपने देखना निरर्थक है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कबीर महान समाज सुधारक थे। जहाँ तक उनके नारी संबंधी या परलोक संबंधी विचार हैं, हमें उनसे प्रभावित नहीं होना चाहिए। क्योंकि वे सत्य धर्म के प्रतिपादक, समन्वयवादी एवं क्रांतिकारी व्यक्ति थे। वे समाज में प्रचलित सभी प्रकार की असमानता बाह्याडम्बर एवं सामाजिक कुरीतियों को दूर करके जनसाधारण को सरल-जीवन, सत्याचरण, पारस्परिक एकता, समता आदि की ओर उन्मुख करने का जो सराहनीय कार्य किया है, उसी के परिणामस्वरूप वे एक उच्चकोटि के 'समाज-सुधारक' कहलाते हैं।

7

तत्कालीन परिस्थिति पर कबीर का प्रभाव

कबीर ने अपने जीवन के निजी अनुभवों से जो कुछ सीखा था, उसके आलोक में तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, सांप्रदायिक तथा राष्ट्रीय व्यवस्था को देखकर हतप्रभ थे। वे इन स्थितियों में अमूल परिवर्तन लाना चाहते थे, लेकिन उनकी बातों को सुनने और मानने को कोई उत्सुक नहीं था। उनको सारा संसार बौराया हुआ लग रहा था।

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान,
मोल करो तलवार का, पड़ा रहने दो म्याना।

वे फरमाते हैं कि साधू जाति से नहीं, ज्ञान से पूयनीय बनता है।

कबीर बराबर प्रयत्नशील रहे कि दुखी, असहाय और पीड़ित जनता के बीच सुख- शांति का प्रसार हो एवं उनका जीवन सुरक्षित और आनंदमय हो। तत्कालीन परिस्थितियों को देखकर उन्होंने अनुभव किया कि भक्ति के मार्ग पर मोड़कर ही जनता को खुशी प्रदान की जा सकती है। उन्होंने इस का ही सहारा लिया –

कहे कबीर सुनों हो साधो, अमृत वचन हमार,
जो भल चाहो आपनी, परखो करो विचार,

आप अपन पो चीन्हहू, नख सिखा सहित कबीर,
आनंद मंगल गाव हु, होहिं अपनपो थीर।

कबीर सुखी जीवन की कला भक्ति को बताते थे। कबीर के पास यही ज्ञान था, इसी ज्ञान के सहारे वे जनजीवन में हरियाली लाने का प्रयास करते रहे। वे कहते हैं कि अगर तुम अपनी भलाई चाहते हो, तो मेरी बातों को ध्यान से सुनो और उन पर अमल भी करो। वे हम मानव को सर्वप्रथम स्वयं को स्थिर करने, शांत होने, अपने को पहचानने एवं आनंद में रहने को कहते हैं। उनके अनुसार जब मानव मन के सारे विकारों को दूर करके शांत स्थिर चित्त से बैठेगा, तो वह हर प्रकार की विषम परिस्थिति से बचा रहेगा। इस प्रकार कबीर मानवतावादी है। मानव के सच्चे शुभचिंतक हैं –

ओ मन धीरज काहे न धरै,
पशु- पक्षी जीव कीट पतंगा, सबकी सुध करे,
गर्भवास में खबर सेतु है, बाहा ओं विसरै।

रे मन, धैर्य रखो। भगवान सब जीव की सुध लेते हैं, तुम्हारी भी लेंगे। जब तुम नौ मास गर्भ में थे, तब भगवान ही रक्षा कर रहे थे। फिर अब वह तुम्हें कैसे भूल सकते हैं ? कबीर इस बात को महसूस का चुके थे कि जनता को सद्भावना, सहानुभूति और प्यार की जरूरत है। किसी भी मूल्य पर वह गरीब जनता के जीवन से रस घोलना चाहते हैं।

पानी बिच मीन प्यासी, मोहि सुन- सुन आवें हांसी।
घर में वस्तु न नहीं आवत, वन- वन फिरत उदसी।

कबीर साहब कहते हैं, भला जल में मछली रहकर प्यासी रह सकती है? प्रत्येक मानव के भीतर ईश का वास है, जहाँ निरंतर आनंद- ही- आनंद है। इसी की खोज करना चाहिए। अन्यत्र बारह घूमने या परेशान होने की कतई जरूरत नहीं है।

कस्तुरी कुंडल वसै, मृग ढूढे वन माहिं,
ऐसे घर- घर राम हैं, दुनियां देखे नाहिं।

कस्तूरी मृग की नाभि में रहता है, लेकिन मृग अज्ञान- वश इसे जंगल में खोजता- फिरता है। इसी तरह सर्वशक्तिमान भगवान और आनंद मनुष्य के अपने अंतर हृदय में ही अवस्थित है, लेकिन अज्ञानी मानव सुख शांति की तलाश में बाहर अंदर घूमता रहता है, जो कि व्यर्थ है। कबीर भक्ति को आकर्षण दिखाकर लोगों के हृदय में शांति का संचार करना चाहते हैं।

दुरलभ दरसन दूर है, नियरे सदा सुख वास,
कहे कबीर मोहि समापिया, मत दुख पावै दास।

कबीर साहब व्यावहारिकता पर बल देते हैं। उनका सब सुझाव सीधा और अनुकरणीय है। वे मानव को सांसारिक प्रपंच से हटाकर अंतर्मुखी होने का सुझाव देते हैं। वे कहते हैं कि दूर का सोचना व्यर्थ है। समीपता में ही सुख का वास है।

परमातम गुरु निकट विराजै,
जाग- जाग मन मेरे,
धाय के पीतम चरनन् लागे,
साई खड़ा सिर तेरे।

उनकी उक्तिनुसार परमात्मा का वास अपने निकट ही है, अतः घबराने की कोई जरूरत नहीं है। आवश्यकता सिर्फ मन को जगाकर परमात्मा में लगाने की है। मानव को दौड़कर भगवान का चरण पकड़ लेना चाहिए, क्योंकि वे सिर के पास ही खड़े हैं। कबीर कहते हैं, आस्था और विश्वास में बहुत बल है। निर्बल जनता के बीच इसी भक्ति का बीजारोपण करने का प्रयास महात्मा कबीर ने किया है।

देह धरे का दण्ड है, सब काहु को होय,
ज्ञानी भुगते ज्ञान से, मूरख भुगते रोय।

महात्मा कबीर कहते हैं कि सभी शरीर धारियों को इस संसार में अपने कर्मानुसार दुख उठाना ही पड़ता है। दुख की इस घड़ी में कतई घबड़ाना नहीं चाहिए, बल्कि शांतिपूर्वक दुख का सहन करना चाहिए। ज्ञानी जन अपने ज्ञान के बल पर इस दुख की मार को स्थिर चित्त से शांति पूर्वक भोग लेते हैं, लेकिन अज्ञानीजन दुख की मार से तिलमिला जाते हैं और रुदन करने लगते हैं। तत्कालीन परिस्थितियों के परिवेश में जनता को वे समझाते हैं कि तुम जिस भी स्थिति में हो, उसी में रहकर शांतिपूर्वक भगवान का ध्यान लगाओ। तुम्हारा दुख-दर्द सब दूर हो जाएगा। अपने मन को शुद्ध करने की आवश्यकता पर बल दो।

जब लग मनहि विकारा, तब लागि नहीं छूटे संसारा,
जब मन निर्मल भरि जाना, तब निर्मल माहि समाना।

जब तक मन में विकार है, तब तक सांसारिक प्रपंच से छुटकारा पाना संभव नहीं है। शुद्धि के पश्चात् ही भक्ति रस में मन रमता है और सांसारिक प्रपंच से मन शनैः शनैः हटने लगता है। वे कहते हैं, मन निर्मल होने पर

आचरण निर्मल होगा और आचरण निर्मल होने से ही आदर्श मनुष्य का निर्माण हो सकेगा।

आदर्श जीवन जीने की यहीं कला है, जिसकी ओर प्रायः सभी संतों ने आगाह किया है।

सुख सागर में आय के, मत जा रे प्यारा,
अजहुं समझ नर बावरे, जम करत निरासा।

महात्मा कबीर चेतावनी देते हैं कि इस संसार में आकर अपना जीवन व्यर्थ मत करो, रामरस पीकर अपने को तृप्त कर लो। कबीर साहब थोड़ा आक्रोश में आकर कहते हैं, अब भी संभल जाओ, होश में आओ और भक्ति में लग जाओ। भक्ति ही कल्याण का मार्ग मात्र है।

दास कबीर यो कहै, जग नाहि न रहना,
संगति हमरे चले गये, हमहूँ को चलाना।

महात्मा कबीर अपनेपन के साथ हमें बतलाते हैं –

यह संसार हम सबों के लिए चिरस्थायी निवास स्थान नहीं है। यहाँ से प्रत्येक मानव को एक न एक दिन जाना ही पड़ता है। हमारे बहुत संगी चले गए। कबीर के अनुसार मनुष्य कितना भी यशस्वी हो, कितना ही विद्वान हो, कितना ही व्यक्तित्त्व मुक्त हो, कितना ही समुद्धशाली हो, कितना ही विद्वान हो, मगर जब तक वह अपने अंदर छिपे हुए उस सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्व का अन्वेषण नहीं करता, उसकी प्राप्ति का प्रयत्न नहीं करता, जब तक उसका जीवन व्यर्थ है –

हरि बिन झूठे सब त्योहार, केते कोई करी गंगवार।
झूठा जप- तप झूठा गमान, राम नाम बिन झूठा ध्यान।

वे फरमाते हैं कि विवेक के निर्देशों का पालन करने वाले व्यक्ति जीवन में असीम आनंद का प्रवाह होता है। विवेकी व्यक्ति किसी भी परिस्थिति में विचलित नहीं होता, क्योंकि उसे अच्छी तरह ज्ञात है कि संसार की समस्त स्थितियाँ नश्वर एवं क्षणिक हैं। विवेक के संबंध में कबीर को स्पष्ट निर्देश है–

मन सागर मनसा लहरि बूड़े बहे अनेक,
कह 'कबीर' तो बाचहि, जिनके हृदय विवेक।

वे कहते हैं कि आनंद दूसरों को दुख देकर नहीं, बल्कि इच्छापूर्वक स्वयं दुख झेलने से ही प्राप्त होता है –

आप ठग्या सुख उपजै,
और ठगया दुख होय।

उनके अनुसार 'धर्म में अभी भी इतनी क्षमता है कि मानव जाति को ऐसी बहुमुखी संपूर्णता की ओर ले जा सकते हैं, जिसमें हिंदू धर्म की आध्यात्मिक ज्योति, यहूदी धर्म की आस्था और आज्ञाकारिता, यूनानी देवार्चन की सुंदरता, बौद्ध धर्म की काव्य करुणा, इसाई धर्म की दिव्य प्रीति और इस्लाम धर्म की त्याग भावना सम्मिलित हो।'

आज हमारा देश जिस संकट में घिरा है, उसका मूल कारण धर्म से विमुखता है, जिसकी वजह से लोगों का सदाचार भी समाप्त हो गया है।

संत कबीर के आविर्भाव के साथ ही संतकाल का सूत्रपात हो गया था। कबीर दास के शिष्य चरण दास, गरीब दास, मलूक दास आदि कवियों ने अध्यात्म की धारा बहाकर हिंदू- मुस्लिम संबंधी विविध प्रसंग लेकर संपूर्ण देश में अराजकता के युग के स्वर्ण युग की संज्ञा दिलाई। इन सभी संतों के काव्य का मूल स्वर अध्यात्म है। सभी संतों ने एक स्वर में घोषणा की कि देश में व्याप्त संकट अराजकता और अन्याय से मुक्ति दिलाने में अध्यात्म ही मदद कर सकता है। इसी के बल पर चलकर देश की प्रगति में सहायक बना जा सकता है।

जिनके सदा अहार अंतर में, केवल संत विचारा।
कहे कबीर सुनो हो गोरख, तारो सहित परिवारा।।

कबीर के अनुसार सत्य विचार ही मूल चीज है, जिसने इस तत्त्व को स्वीकार किया और उस पर अमल किया, निश्चय ही वह परिवार सहित कल्याण का भागी होगा।

क्या गायें क्या लिखि बतलाये, क्या भ्रमे संसार।
क्या संध्या तपन के कीन्हें जो नहि तत्त्व विचारा।।

झूठ बनाने और अनर्थ गर्व करने से कुछ नहीं होने वाला है। इससे सिर्फ भ्रम पैदा होता है। संध्या तपन से भी कोई लाभ नहीं होता, अगर मन में सत्य विचार नहीं।

संत मलूक दास ने भी इसी आशय के भाव व्यक्त किये –

दीन बंधु दीनानाथ, अनाथ की सुधि लीजिए,
कहत है मलूक दास, छोड़ि दे परायी आस

रामधन पाई के अब करके शरण जाइए,
दीनबंधु, दीनानाथ, मेरी सुध लीजिए।

शुद्ध भावना रखकर भगवान की भक्ति करना, उन पर अटल विश्वास रखना और उनकी शरण में अपने को समर्पित कर देना ही, मानव का सच्चा धर्म है। इसी से सत्य की अर्थात् परमात्मा की प्राप्ति संभव है।

ज्यू जल और मलिन महा अंत,
रागमिल्या दुई, जाति हि गंगा,
सुंदर, शुद्ध करे तत्काल जु हे,
जग माहि बड़ी सत्संग॥

अर्थात् मन चंचल है। उसे शांत रखने के लिए साधुओं की संगति अनिवार्य है। अशुद्ध जल भी गंगा में मिलकर, पवित्र बन जाता है। इसी तरह सत्संग के प्रभाव से बुद्धि का परिष्कार होता है तथा दुष्ट प्रकृति का मनुष्य भी गुणवान बन जाता है।

नरहरि चंचल हे मति मेरी,
कैसे भगति करूँ मैं तेरी,
सब घट अंतर रमे निरंतर,
मैं देखन नहीं गाना।

अर्थात्

बुद्धि चंचल है, इसलिए भक्ति करने में कठिनाई होती है। अतः आवश्यकता है, इस चंचल मति को शांत करने की, ताकि ध्यान में मन लग सके। इसी घट अर्थात् सबके हृदय के भीतर निरंतर राम का निवास है, लेकिन उन्हें देखने की कला में हम अनभिज्ञ है। अतः ध्यान द्वारा इसे देखने का प्रयास करना चाहिए। सांसारिक संकटों से छुटकारा पाने का यह एक अमोघ उपाय है।

संतनाम संतोष हरिधरि, प्रेम मंगल गावही।
मिसिहि सतगुरु शब्द पाव हि, फिर न भवजल अवाही।

सत्य शब्द को संतोषपूर्वक ग्रहण करके प्रेमपूर्वक मंगलकारी भजन करना चाहिए। इसके लिए सतगुरु की शरण में जाना आवश्यक है।

सतनाम निजु सार हे, सतहि करो विचार,
जो दरिया गुअं गहि रहे, तो मिले शब्द सार।

ज्ञान की प्राप्ति हेतु मार्गदर्शक अर्थात् गुरु का होना अत्यावश्यक है। सत्य नाम ही मुख्य चीज है, इसी का चिंतन बराबर होना चाहिए।

8

कबीर ग्रंथावली

कबीर निर्गुण सन्त काव्यधारा के ऐसे शब्द-साधक हैं जिन्होंने अपने युग की धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था से टकराकर अद्‌भुत शक्ति प्राप्त की। पारम्परिक सांस्कृतिक प्रवाह में सम्मिलित प्रदूषित तत्त्वों को छानकर उसे मध्यकाल के लिए ही आस्वादनीय नहीं, बल्कि आधुनिक जनमानस के लिए भी उपयोगी बना दिया। भारतीय धर्म साधना में निडर तथा अकुंठित व्यक्तित्त्व विरले हैं। पंडितों, मौलवियों, योगियों आदि से लोहा लेकर कबीर ने जन साधारण के स्वानुभूतिजन्य विचारों और भावों की मूल्यवत्ता स्थापित की। कबीर की वाणी संत-कंठ से निसृत होकर साधकों, अनुयायियों एवं लोक जीवन में स्थान एवं रुचि भेद के अनुसार विविध रूपों में परिणित हो गयी। इसलिए कबीर की वाणी के प्रामाणिक पाठ निर्धारण की जटिल समस्या खड़ी हो गयी। कबीर पंथ में बीजक की श्रेष्ठता मान्य है, विद्वानों ने ग्रंथावलियों को महत्व दिया है। सामान्य जन के लिए लोक में व्याप्त कबीर वाणी ग्राह्य है।

ग्रंथावली का संपादन

रामकिशोर शर्मा का कथन है कि जो व्यक्ति काल के विरुद्ध खड़ा होता है उसे चतुर्दिक से आघात सहने पड़ते हैं, सम्पूर्ण अस्तित्त्व को मिटा देने वाले आघातों से जब वह अक्षत शेष रह जाता है तो जनमानस इस अनुमान से उसकी ओर दौड़ पड़ता है कि उसमें कुछ असाधारण अवश्य है। उसके विषय में तरह-तरह

की किंवदन्ती बनने लगती हैं। निरन्तर वह असाधारण होता जाता है, यहाँ तक कि उसे ईश्वरीय अवतार भी मान लिया जाता है। कबीर कुछ इसी तरह के व्यक्ति हैं, जो गौतम बुद्ध, महावीर आदि की तरह राजघराने की शक्ति सम्पन्नता तथा वैभव की पृष्ठभूमि नहीं रखते थे, एक नितान्त उपेक्षित तिरस्कृत परिवार की पृष्ठभूमि से उठकर धार्मिक व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध अपनी जान को जोखिम में डालकर खड़े हो गए। उन्होंने जो कुछ किया ईश्वर के आदेश से ही किया। उनकी साधना, आत्मा, परमात्मा एवं जीवन की विविध अनुभूतियाँ कवित्वमय वाणी में जब उद्घोषित होने लगीं तो उनके सम्पर्क में रहने वाले संतों, श्रद्धालु, शिष्यों तथा जनता ने उन्हें उपयोगी समझकर अपने मस्तिष्क में अंकित कर लिया, कुछ ने उन्हें आगे पीछे लिपि बद्ध भी किया। जैसे पहाड़ी घाटी में तेज आवाज से चिल्लाने पर कुछ देर तक वाणी की प्रतिध्वनि गूँजती रहती है, उसी तरह महान् रचनाकार की वाणी जनता के हृदय-गुहा में ध्वनित, प्रतिध्वनित होती है, यह सिलसिला शताब्दियों तक चलता रहता है। बड़ा रचनाकार सिर्फ रचना नहीं बल्कि रचनात्मक क्षमता को उत्तेजित भी करता है। उसके पाठक और श्रोता उसकी रचना में अपनी रचना को भी मिलाने का प्रयत्न करते हैं या बड़े रचनाकार को प्रमाण (आप्त) मानकर अपनी रचना को उसके नाम की मुहर से प्रचारित, प्रसारित करने का दुस्साहस भी करते हैं।

लोक में कबीर की जो वाणी मौखिक परम्परा से चली आ रही है उसको शत-प्रतिशत शुद्ध तो नहीं माना जा सकता किन्तु उसकी मूल चेतना में कबीर की चेतना मौजूद है, उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। डॉ.माता प्रसाद गुप्त, 'श्यामसुन्दर दास, डॉ.रामकुमार वर्मा, डॉ.पारसनाथ तिवारी, जयदेव सिंह, डॉ.शुकदेव सिंह आदि अनेक विद्वानों द्वारा संपादित कबीर के पाठ को हिन्दी के विद्वान् तथा प्रबुद्ध पाठक प्रामाणिक मानकर स्वीकार करते हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर के परिशिष्ट में जो 'कबीर वाणी' को संकलित किया है उसमें लोक परम्परा भी अनुस्यूत है।

काल की कठोर आवश्यकताएँ महात्माओं को जन्म देती हैं। कबीर का जन्म भी समय की विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हुआ था। अवसर के उचित उपयोग अनभिज्ञ और कर्मठता के उदासीन रहने वाली हिंदू जाति को धर्मजन्य दयालुता ने उसे दासता के गर्त में ढकेल दिया था। उसका शूरवीरत्व उसके किसी काम न आया। वीरता के साथ-साथ वीरगाथाओं और वीरगीतों की अंतिम प्रतिध्वनि भी रणथंभौर के पतन के साथ ही विलीन हो गयी।

शहाबुद्दीन गोरी (मृत्यु सं. 1263) के समय से ही इस देश में मुसलमानों के पाँव जमने लग गये थे, उसके गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक (सं. 1263-1273) ने गुलाम वंश की स्थापना कर पठानी सल्तनत और भी दृढ़ कर दी। भारत की लक्ष्मी पर लुब्ध मुसलमानों का विकराल स्वरूप, जिसे उनकी धर्मांधता ने और भी अधिक विकराल बना दिया था, अलाउद्दीन खिलजी (सं. 1352-1372) के समय में भलीभाँति प्रकट हुआ। खेतों में खून और पसीना एक करने वाले किसानों की कमाई का आधे से अधिक अंश भूमिकर के रूप में राजकोष में जाने लगा। प्रजा दाने-दाने को तरसने लगी। सोने-चाँदी की तो बात ही क्या, हिन्दुओं के घरों में ताँबे, पीतल की थाली, लोटों तक का रहना मुलतान को खटकने लगा। उनका घोड़े की सवारी करना और अच्छे कपड़े पहनना महान् अपराधों में गिना जाने लगा। नाममात्र के अपराध के लिए भी किसी की खाल खिंचवाकर उसमें भूसा भरवा देना एक साधारण बात थी।

अलाउद्दीन खिलजी के लड़के कुतुबुद्दीन मुबारक (सं. 1373-1377) के शासनकाल में जब देवगिरि का राजा हरपाल बन्दी करके दिल्ली लाया गया, तब उसकी यही दशा हुई। मन्दिरों को गिराकर उसके स्थान पर मस्जिदें बनाने का लग्गा तो बहुत पहले ही लग चुका था, अब स्त्रियों के मान और पतिव्रता की रक्षा करना भी कठिन हो गया। चित्तौड़ पर अलाउद्दीन की दो चढ़ाइयाँ केवल अतुल सुंदरी पद्मिनी की ही प्राप्ति के लिए हुईं, अंत में गढ़ के टूट जाने और अपने पति के वीरगति पाने पर पुण्यप्रतिमा महाराणी पद्मिनी ने अन्य वीर क्षत्रणियों के साथ अपने मान की रक्षा के लिए अग्निदेव के क्रोड़ में शरण ली और जौहर करके हिंदू जाति का मस्तक ऊँचा किया।

तुगलक वंश के अधिकार रूढ़ होने पर भी ये कष्ट कम नहीं हुए वरन् मुहम्मद तुगलक (सं. 1382-1408) की ऊटपटाँग व्यवस्थाओं से और भी बढ़ गये। समस्त राजधानी, जिसमें नवजात शिशु से लेकर मरणोन्मुख वृद्ध तक थे, दिल्ली से लाकर दौलताबाद में बसाई गयी। परंतु जब वहाँ आने से अधिक लोग मर गये तब सबको फिर दिल्ली लौट जाने की आज्ञा दी गयी। हिंदू जाति के लिए जीवन धीरे-धीरे एक भार-सा होने लगा, कहीं से आशा की झलक तक न दिखाई देती थी। चारों ओर निराशा और निरवलम्बता का अंधकार छाया हुआ था।

हिंदू रक्त ने खुसरो की नसों में उबलकर हिंदू राज्य की स्थापना का प्रयत्न किया तो था (वि. सं. 1308) पर वह सफल न हो सका। इसके अनंतर सारी

आशाएँ बहुत दिनों के लिए मिट्टी में मिल गयीं। तैमूर के आक्रमण ने देश को जहाँ-तहाँ उजाड़ कर नैराश्य की चरम सीमा तक पहुँचा दिया। हिंदू जाति में से जीवन शक्ति के सब लक्षण मिट गये। विपत्ति की चरम सीमा तक पहुँचकर मनुष्य पहले तो परमात्मा की ओर ध्यान लगाता है और अनेक कष्टों से छुटकारा पाने की आशा करता है, पर जब स्थिति में सुधार नहीं होता, तब परमात्मा की भी उपेक्षा करने लगता है, उसके अस्तित्त्व पर उसका विश्वास ही नहीं रह जाता।

कबीर के जन्म के समय हिंदू जाति की यही दशा हो रही थी। वह समय और परिस्थिति अनीश्वरवाद के लिए बहुत ही अनुकूल थी, यदि उसकी लहर चल पड़ती तो उसे रोकना बहुत ही कठिन हो जाता। परंतु कबीर ने बड़े ही कौशल से इस अवसर से लाभ उठाकर जनता को भक्तिमार्ग की ओर प्रवृत्त किया और भक्तिभाव का प्रचार किया। प्रत्येक प्रकार की भक्ति के लिए जनता इस समय तैयार नहीं थी।

मूर्तियों की अशक्तता वि.सं. 1081 में बड़ी स्पष्टता से प्रगट हो चुकी थी जब कि मुहम्मद गजनवी ने आत्मरक्षा से विरत, हाथ पर हाथ रखकर बैठे हुए श्रद्धालुओं को देखते-देखते सोमनाथ का मंदिर नष्ट करके उनमें से हजारों को तलवार के घाट उतारा था। गजेंद्र की एक ही टेर सुनकर दौड़ आने वाले और ग्राह से उसकी रक्षा करने वाले सगुण भगवान जनता के घोर संकटकाल में भी उसकी रक्षा के लिए आते हुए न दिखाई दिए। अतएव उनकी ओर जनता को सहसा प्रवृत्त कर सकना असंभव था। पंढरपुर के भक्तशिरोमणि नामदेव की सगुण भक्ति जनता को आकृष्ट न कर सकी, लोगों ने उनका वैसा अनुकरण न किया जैसा आगे चलकर कबीर का किया और अंत में उन्हें भी ज्ञानाश्रित निर्गुण भक्ति की ओर झुकना पड़ा।

उस समय परिस्थिति केवल निराकार और निर्गुण ब्रह्म की भक्ति के ही अनुकूल थी, यद्यपि निर्गुण शक्ति का भलीभाँति अनुभव नहीं किया जा सकता था, उसका आभास मात्र मिल सकता था। पर प्रबल जलधार में बहते हुए मनुष्य के लिए यह कूलस्थ मनुष्य या चट्टान किस काम की है, जो उसकी रक्षा के लिए तत्परता न दिखलाए। पर उसकी ओर बहकर आता हुआ एक तिनका भी उसके हृदय में जीवन की आशा पुनरुद्दीप्त कर देता है और उसी का सहारा पाने के लिए वह अनायास हाथ बढ़ा देता है। कबीर ने अपनी निर्गुण भक्ति के द्वारा यही आशा भारतीय जनता के हृदय में उत्पन्न की और उसे कुछ अधिक समय तक विपत्ति की इस अथाह जलराशि के ऊपर बने रहने की उत्तेजना दी, यद्यपि

सहायता की आशा से आगे बढ़े हुए हाथ को वास्तविक सहारा सगुण भक्ति से ही मिला और केवल रामभक्ति ही उसे किनारे पर लाकर सर्वथा निरापद कर सकी।

रामभक्ति ने न केवल सगुण कृष्णभक्ति के समान जनता की दृष्टि जीवन के आनन्दोल्लासपूर्ण पक्ष की ओर ही लगाई, प्रत्युत आनंदविरोधिनी मांगलिक शक्तियों के संहार का विधान कर दूसरे पक्ष में भी आनंद की प्राणप्रतिष्ठा की। पर इससे जनता पर होने वाले कबीर के उपकार का महत्व कम नहीं हो जाता। कबीर यदि जनता को भक्ति की ओर न प्रवृत्त करते तो क्या यह संभव था कि लोग इस प्रकार सूर की कृष्णभक्ति अथवा तुलसी की रामभक्ति आँखें मूँदकर ग्रहण कर लेते?

सारांश यह है कि कबीर का जन्म ऐसे समय में हुआ जब कि मुसलमानों के अत्याचारों से पीड़ित भारतीय जनता को अपने जीवित रहने की आशा नहीं रह गयी थी और न उसमें अपने आपको जीवित रखने की इच्छा ही शेष रह गयी थी। उसे मृत्यु या धर्मपरिवर्तन के अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं दिखाई पड़ता था। यद्यपि धर्मज्ञ तत्त्वज्ञों ने सगुण उपासना से आगे बढ़ते चढ़ते निर्गुण उपासना तक पहुँचने का सुगम मार्ग बतलाया है और वास्तव में यह तत्त्व बुद्धिसंगत भी जान पड़ता है, पर उस समय सगुण उपासना की निःसारता का जनता को परिचय मिल चुका था और उस पर से उनका विश्वास भी हट चुका था। अतएव कबीर को अपनी व्यवस्था उलटनी पड़ी। मुसलमान भी निर्गुण उपासक थे। अतएव उनसे मिलते-जुलते पथ पर लगाकर कबीर ने हिंदू जनता को संतोष और शांति प्रदान करने का उद्योग किया। यद्यपि उस उद्योग में उन्हें सफलता नहीं प्राप्त हुई, तथापि यह स्पष्ट है कि कबीर के निर्गुणवाद में तुलसी और सूर के सगुणवाद के लिए मार्ग परिष्कृत कर दिया और उत्तरी भारत के भावी धर्ममय जीवन के लिए उसे बहुत कुछ संस्कृत और परिष्कृत बना दिया।

जिस समय कबीर आविर्भूत हुए थे, वह समय ही भक्ति की लहर का था। उस लहर को बढ़ाने के प्रबल कारण भी प्रस्तुत थे। मुसलमानों के भारत में आ बसने से परिस्थिति में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया। हिंदू जनता का नैराश्य दूर करने के लिए भक्ति का आश्रय ग्रहण करना आवश्यक था। इसके अतिरिक्त कुछ लोगों ने हिंदू और मुसलमान भक्त संतों की परंपरा विरोधी जातियों को एक करने की आवश्यकता का भी अनुभव किया। इस अनुभव के मूल में एक ऐसे सामान्य भक्तिमार्ग का विकास गर्भित था, जिससे परमात्मा की एकता के आधार

पर मनुष्यों की एकता का प्रतिपादन हो सकता था और जिसका मूलाधार भारतीय अद्वैतवाद और मुसलमानी एकेश्वरवाद के सूक्ष्मभेद की ओर ध्यान नहीं दिया गया और दोनों के एक विचित्र मिश्रण के रूप में निर्गुण भक्तिमार्ग चल पड़ा। रामानंदजी के बारह शिष्यों में से कुछ इस मार्ग के प्रवर्तन में प्रवृत्त हुए जिनमें से कबीर प्रमुख थे। शेष में सेना, धना, भवानंद, पीपा और रैदास थे, परंतु उनका उतना प्रभाव न पड़ा जितना कबीर का। नरहर्यानंदजी ने अपने शिष्य गोस्वामी तुलसीदास को प्रेरित करके उनके कर्तृत्व से सगुण रामभक्ति का एक और ही स्रोत प्रवाहित कराया।

मुसलमानों के आगमन से हिंदू समाज पर एक और प्रभाव पड़ा। पददलित शूद्रों की दृष्टि में उन्मेष हो गया। उन्होंने देखा कि मुसलमानों में द्विजों और शूद्रों का भेद नहीं है। सधर्मी होने के कारण वे सब एक हैं, उनके व्यवसाय ने उनमें कोई भेद नहीं डाला है, न उनमें कोई छोटा है और न कोई बड़ा। अतएव इन ठुकराए हुए शूद्रों में से ही कुछ ऐसे महात्मा निकले जिन्होंने मनुष्यों की एकता को उद्घोषित करना चाहा। इस नवोत्थित भक्तिरंग में सम्मिलित होकर हिंदू समाज में प्रचलित इस भेदभाव के विरुद्ध भी आवाज उठाई गयी। रामानंदजी ने सबके लिए भक्ति का मार्ग खोलकर उनको प्रोत्साहित किया। नामदेव दरजी, रैदास चमार, दादू धुनिया, कबीर जुलाहा आदि समाज की नीची श्रेणी के ही थे, परंतु उनका नाम आज तक आदर से लिया जाता है।

वर्णभेद से उत्पन्न उच्चता और नीचता को ही नहीं, वर्गभेद से उत्पन्न उच्चता– नीचता को भी दूर करने का इस निर्गुण भक्ति से प्रयत्न किया। स्त्रियों का पद स्त्री होने के कारण नीचा न रह पाया। पुरुषों के ही समान वे भी भक्ति की अधिकारिणी हुई। रामानंदजी के शिष्यों में से दो स्त्रियाँ थीं, एक पद्मावती और दूसरी सुरसरी। आगे चलकर सहजोबाई और दयाबाई भी भक्तसंतों में से हुई। स्त्रियों की स्वतंत्रता के परम विरोधी, उनको घर की चहारदीवारी के अन्दर ही कैद रखने के कट्टर पक्षपाती तुलसीदासजी भी जो मीराबाई को 'राम विमुख तजिय कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही' का उपदेश दे सके, वह निर्गुण भक्ति के ही अनिवार्य और अलक्ष्य प्रभाव के प्रसाद से समझना चाहिए। ज्ञानी संतों ने स्त्री की जो निंदा की है, वह दूसरी ही दृष्टि से है। स्त्री से उनका अभिप्राय स्त्री–पुरुष के कामवासनापूर्ण संसर्ग से है। स्त्री की निंदा कबीर से बढ़कर कदाचित् ही किसी ने की हो, परंतु पति–पत्नी की भाँति न रहते हुए भी लोई का आजन्म उनके साथ रहना प्रसिद्ध है।

कबीर इस निर्गुण भक्तिप्रवाह के प्रवर्तक हैं, परंतु भक्त नामदेव इनसे भी पहले हो गये थे। नामदेव का नाम कबीर ने शुक, उद्धव, शंकर आदि ज्ञानियों के साथ लिया है–

जागे सुक ऊधव अकूर हणवंत जागे लै लँगूर।
संकर जागे चरन सेव, कलि जागे नामाँ जैदेव॥

अक्रूर, हनुमान और जयदेव की गिनती ज्ञानियों (जाग्रतों) में कैसे हुई, यह नहीं कह सकते। नामदेव जी जाति के दर्जी थे और दक्षिण के सतारा जिले के नरसी बमनी नामक स्थान में उत्पन्न हुए थे। पंढरपुर में विठोबाजी का मंदिर है। ये उनके बड़े भक्त थे। पहले ये सगुणोपासक थे, परंतु आगे चलकर इनका झुकाव निर्गुणभक्ति की ओर हो गया।

कबीर के पीछे तो संतों की मानो बाढ़ सी आ गयी और अनेक मत चल पड़े। पर सब पर कबीर का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित है। नानक, दादू, शिवनारायण, जगजीवनदास आदि जितने प्रमुख संत हुए, सबने कबीर का अनुकरण किया और अपना-अपना अलग मत चलाया। इनके विषय की मुख्य बातें ऊपर आ गयी हैं, फिर भी कुछ बातों पर ध्यान दिलाना आवश्यक है।

सबने नाम, शब्द, सद्गुरु आदि की महिमा गाई है और मूर्तिपूजा, अवतारवाद तथा कर्मकांड का विरोध किया है, तथा जाति-पाँति का भेदभाव मिटाने का प्रयत्न किया है, परंतु हिंदू जीवन में व्याप्त सगुण भक्ति और कर्मकांड के प्रभाव से इनके परिवर्तित मतों के अनुयायियों द्वारा वे स्वयं परमात्मा के अवतार माने जाने लगे हैं और उनके मतों में भी कर्मकांड का पाखंड घुस गया है। कई मतों में केवल द्विज लिये जाते हैं। केवल नानक देवजी का चलाया सिक्ख संप्रदाय ही ऐसा है जिसमें जाति-पाँति का भेद नहीं आने पाया, परंतु उसमें भी कर्मकांड की प्रधानता हो गयी है और ग्रंथसाहब का प्रायः वैसा ही पूजन किया जाता है जैसा मूर्तिपूजक मूर्ति का करते हैं। कबीरदास के मनगढ़ंत चित्र बनाकर उनकी पूजा कबीरपंथी मठों में भी होने लग गयी है और सुमिरनी आदि का प्रचार हो गया है।

यद्यपि आगे चलकर निर्गुण संत मतों का वैष्णव संप्रदायों से बहुत भेद हो गया, तथापि इसमें संदेह नहीं की संतधारा का उद्गम भी वैष्णव भक्ति रूपी स्रोत से ही हुआ है। श्रीरामानुज ने संवत् 1144 में यादवाचल पर नारायण की मूर्ति स्थापित करके दक्षिण में वैष्णव धर्म का प्रवाह चलाया था पर उनका भक्ति का आधार ज्ञानमार्गी अद्वैतवाद था उनका अद्वैत विशिष्टाद्वैत हुआ। गुजरात में

माधवाचार्य ने द्वैतमूलक वैष्णव धर्म का प्रवर्तन किया। जो कुछ कहा जा चुका है, उससे पता लगेगा कि संत धारा अधिकतर ज्ञानमार्ग के ही मेल में रही। पर उधर बंगाल में महाप्रभु चैतन्यदेव और उत्तर भारत में वल्लभाचार्यजी के प्रभाव से भक्ति के लिए परमात्मा के सगुण रूप की प्रतिष्ठा की गयी। यद्यपि सिद्धांत रूप में ज्ञानमार्ग का त्याग नहीं किया गया और तो और तुलसीदासजी तक ने ज्ञानमार्ग की बातों का निरूपण किया है, यद्यपि उन्होंने उन्हें गौणस्थान दिया है।

संतों में भी कहीं-कहीं अनजान में सगुणवाद आ गया है और विशेषकर कबीर में क्योंकि भक्ति गुणों का आश्रय पाकर ही हो सकती है। शुद्ध ज्ञानाश्रयी उपनिषदों तक में उपासना के लिए ब्रह्म में गुणों का आरोप किया गया है। फिर भी तथ्य की बात यह जान पड़ती है कि वैष्णव संप्रदाय ने आगे चलकर व्यवहार में सगुण भक्ति का आश्रय लिया, तब भी संत मतों ने ज्ञानाश्रयी निर्गुण भक्ति ही से अपना संबंध रखा।

यहाँ पर यह कह देना उचित जँचता है कि कबीर सारतः वैष्णव थे। अपने आपको उन्होंने वैष्णव तो कहीं नहीं कहा है, परंतु वैष्णव की जितनी प्रशंसा की है, उससे उनकी वैष्णवता का बहुत पुष्ट प्रमाण मिलता है-

मेरे संगी द्वै जणा एक वैष्णव एक राम।
वो है दाता मुक्ति का वो सुमिरावै नाम॥
कबीर धनि ते सुंदरी जिनि जाया वैसनौं पूत।
राम सुमिरि निरभै हुआ सब जग गया अऊत॥
साकत बाभँण मति मिलै बेसनौं मिलै चँडाल।
अंकमाल दे भेंटिए मानौ मिलै गोपाल॥

शाक्तों की निंदा के लिए यह तत्परता उनकी वैष्णवता का ही फल है। शाक्त को उन्होंने कुत्ता तक कह डाला है-

साकत सुनहा दूनो भाई, एक नीदै एक भौंकत जाई।

जो कुछ संदेह उनकी वैष्णवता में रह जाता है, वह रामानंद जी को गुरु बनाने की उनकी आकुलता से दूर हो जाना चाहिए। अन्य वैष्णवों में और उनमें जो भेद दिखाई देता है उसका कारण, जैसा कि हम आगे चलकर बतावेंगे, उनके सिद्धांत और व्यवहार में भेद न रखने का फल है।

कबीरदास के जीवन चरित्र के संबंध में तथ्य की बातें बहुत कम ज्ञात हैं, यहाँ तक कि उनके जन्म और मरण के संवतों के विषय में भी अब तक कोई निश्चित बातें नहीं ज्ञात हुई हैं। कबीरदास के विषय में कालनिर्णय लोगों

ने जो कुछ लिखा है, सब जनश्रुति के आधार पर हैं। इनका समय भी अनुमान के आधार पर निश्चित किया गया है। **डॉ. हंटर** ने इनका जन्म संवत् 1437 में और **विल्सन** ने मृत्यु सं. 1505 में मानी है। **रेवरेंड वेस्टकाट** के अनुसार इनका जन्म 1497 में और मृत्यु संवत् 1575 में हुई। कबीरपंथियों में इनके जन्म के विषय में यह पद्य प्रसिद्ध है–

चौदह सौ पचपन साल भए, चन्द्रवार एक ठाठ ठए।
जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी तिथि प्रगट भए॥
घन गरजें दामिनि दमके बूँदे बरषें झर लाग गये।
लहर तलाब में कमल खिले तहँ कबीर भानु प्रगट भए॥

यह पद्य कबीरदास के प्रधान शिष्य और उत्तराधिकारी धर्मदास का कहा हुआ बताया जाता है। इसके अनुसार कबीरदास का जन्म लोगों ने संवत् 1455 ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा चन्द्रवार को माना है, परंतु गणना करने से संवत् 1455 में ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा चन्द्रवार को नहीं पड़ती। पद्य को ध्यान से पढ़ने पर संवत् 1456 निकलता है, क्योंकि उसमें स्पष्ट शब्दों में लिखा है 'चौदह सौ पचपन साल गये, अर्थात् उस समय तक संवत् 1455 बीत गया था।

ज्येष्ठ मास वर्ष के आरंभिक मासों में है, अतएव उसके लिए चौदह सौ पचपन साल गये लिखना स्वाभाविक भी है, क्योंकि वर्षारंभ में नवीन संवत् लिखने का उतना अभ्यास नहीं रहता। संवत् 1456 में ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा चन्द्रवार को ही पड़ती है। अतएव यही संवत् कबीर के जन्म का ठीक संवत् जान पड़ता है।

इनके निधन के संबंध में दो तिथियाँ प्रसिद्ध हैं–

1. संवत् पन्द्रह सौ और पाँच मौ मगहर कियो गमन।
   अगहन सुदी एकादशी, मिले पवन में पवन।।
2. संवत् पन्द्रह सौ पछत्तरा, कियो मगहर को गवन।
   माघ सुदी एकादशी, रलो पवन में पवन।।

एक के अनुसार इनका परलोकवास संवत् 1505 में और दूसरे के अनुसार 1575 में ठहरता है। दोनों तिथियों में 70 वर्ष का अंतर है। वार न दिए रहने के कारण ज्योतिष की गणना से तिथियों की जाँच नहीं की जा सकती।

हिंदू रक्त की ही ओर संकेत करता है। स्वयं कबीरदास ने अपने माता-पिता का कहीं कोई उल्लेख नहीं किया है और जहाँ कहीं उन्होंने अपने

संबंध में कुछ कहा भी है वहाँ अपने को जुलाहा और बनारस का रहने वाला बताया है–

'जाति जुलाहा मति को धीर। हरषि हरषि गुण रमै कबीर'।
'मेरे राम की अभैपद नगरी, कहै कबीर जुलाहा।'
'तू ब्राह्मन मैं काशी का जुलाहा।'

परंतु जान पड़ता है कि उनकी हार्दिक इच्छा थी कि यदि मेरा ब्राह्मण कुल में जन्म हुआ होता तो अच्छा होता। वे पूर्व जन्म के अपने ब्राह्मण होने की कल्पना कर अपना परितोष कर लेते हैं। एक पद में वे कहते हैं–

'पूरब जनम हम ब्राह्मन होते वोछे करम तप हीना।
रामदेव की सेवा चूका पकरि जुलाहा कीना।।'

ग्रंथसाहब में कबीरदास का एक पद दिया है जिसमें कबीरदास कहते हैं– 'पहले दर्शन मगहर पायो पुनि काशी बसे आयी।' एक दूसरे पद में कबीरदास कहते हैं– 'तोरे भरोसे मगहर बसियो मेरे मन की तपन बुझाई।' यह तो प्रसिद्ध ही है कि कबीरदास अंत में मगहर में जाकर बसे और वहीं उनका परलोकवास हुआ। पर 'पहले दर्शन मगहर पायो पुनि काशी बसे आयी' से तो यह ध्वनि निकलती है कि उनका जन्म ही मगहर में हुआ था और फिर ये काशी में आकर बस गये और अंत में फिर मगहर में जाकर परलोक सिधारे। तो क्या विधवा ब्राह्मणी के गर्भ में जन्म पाने और नीरू तथा नीमा से पालित–पोषित होने की समस्त कथा केवल मनगढ़ंत है और उसमें कुछ भी सार नहीं। यह विषय विशेष रूप से विचारणीय है।

कुछ लोग कबीर को नीरू और नीमा का औरस पुत्र मानते हैं, परंतु इस मत के पक्ष में कोई साधार प्रमाण अब तक किसी ने नहीं दिया। स्वयं कबीर की एक उक्ति हम ऊपर दे चुके हैं जिसमें उनका जन्म से मुसलमान न होना प्रकट होता है, परंतु 'जौ रे खुदाई तुरक मोहि करता आपै कटि किन जाई' से यह ध्वनित होता है कि वे मुसलमान माता–पिता की संतति थे। सब बातों पर विचार करने से इसी मत के ठीक होने की अधिक संभावना है कि कबीर ब्राह्मणी या किसी हिंदू स्त्री के गर्भ से उत्पन्न और मुसलमान परिवार में लालित–पालित हुए थे। कदाचित् उनका बालकपन मगहर में बीता हो और पीछे से आकर काशी में बसे हों, जहाँ से अंतकाल के कुछ पूर्व उन्हें पुनः मगहर में जाना पड़ा हो।

गुरु

किंवदंती है कि जब कबीर भजन गा-गा कर उपदेश देने लगे तब उन्हें पता चला कि बिना किसी गुरु से दीक्षा लिये हमारे उपदेश मान्य नहीं होंगे क्योंकि लोग उन्हें 'निगुरा' कहकर चिढ़ाते थे। लोगों का कहना था कि जिसने किसी गुरु से उपदेश नहीं ग्रहण किया, वह औरों को क्या उपदेश देगा! अतएव कबीर को किसी को गुरु बनाने की चिंता हुई। कहते हैं, उस समय स्वामी रामानंदजी काशी में सबसे प्रसिद्ध महात्मा थे। अतएव कबीर उन्हीं की सेवा में पहुँचे। परंतु उन्होंने कबीर के मुसलमान होने के कारण उनको अपना शिष्य बनाना स्वीकार नहीं किया। इस पर कबीर ने एक चाल चली जो अपना काम कर गयी। रामानंदजी पंचगंगा घाट पर नित्य प्रति प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में ही स्नान करने जाया करते थे। उस घाट की सीढ़ियों पर कबीर पहले से ही जाकर लेट रहे। स्वामीजी जब स्नान करके लौटे तो उन्होंने अँधेरे में इन्हें न देखा, उनका पाँव इनके सिर पर पड़ गया जिस पर स्वामीजी के मुँह से 'राम राम' निकल पड़ा। कबीर ने चट उठकर उनके पैर पकड़ लिये और कहा कि आप राम-राम का मंत्र देकर आज मेरे गुरु हुए हैं। रामानंदजी से कोई उत्तर देते न बना। तभी से कबीर ने अपने को रामानंद का शिष्य प्रसिद्ध कर दिया।

पर कोई मत स्थिर करना उचित नहीं जँचता। केवल किंवदंती के आधार पर रामानंदजी को उनका गुरु मान लेना ठीक नहीं। यह किंवदंती भी ऐतिहासिक जाँच के सामने ठीक नहीं ठहरती। रामानंदजी की मृत्यु अधिक से अधिक देर में मानने से संवत् 1467 में हुई, इससे 14 या 15 वर्ष पहले भी उनके होने का प्रमाण विद्यमान है। उस समय कबीर की अवस्था 11 वर्ष की रही होगी 11 वर्ष के बालक का घूम-फिरकर उपदेश देने लगना सहसा ग्राह्य नहीं होता और यदि रामानंदजी की मृत्यु संवत् 1453 के लगभग हुई तो यह किंवदंती झूठ ठहरती है, क्योंकि उस समय तो कबीर को संसार में आने के लिए अभी तीन-चार वर्ष रहे होंगे।

पर जब तक कोई विरुद्ध दृढ़ प्रमाण नहीं मिलते, तब तक हम इस लोकप्रसिद्ध बात को कि रामानंदजी कबीर के गुरु थे, बिलकुल असत्य भी नहीं ठहरा सकते। हो सकता है कि बाल्यकाल में बार-बार रामानंदजी के साक्षात्कार तथा उपदेश श्रवण से ('गुरु के सबद मेरा मन लागा') अथवा दूसरों के मुँह से उनके गुण तथा उपदेश सुनने में बालक कबीर के चित्त पर गहरा प्रभाव पड़ गया हो, जिसके कारण उन्होंने आगे चलकर उन्हें अपना मानस गुरु मान लिया

हो। कबीर मुसलमान माता-पिता की संतति हों चाहे नहीं किंतु मुसलमान के घर में लालित-पालित होने पर भी उनका हिंदू विचारधारा में आप्लावित होना उन पर बाल्यकाल ही से किसी प्रभावशाली हिंदू का प्रभाव होना प्रदर्शित करता है-

'हम भी पाहन पूजते होते बन के रोझ।
सतगुरु की किरपा भई सिर तैं उतरय्या बोझ।।'

इससे प्रकट होता है कि अपने गुरु रामानंद से प्रभावित होने से पहले कबीर पर हिंदू प्रभाव पड़ चुका था, जिससे वे मुसलमान कुल में परिपालित होने पर भी 'पाहन' पूजने वाले हो गये थे। कबीर लोगों के कहने से कोई काम करने वाले नहीं थे। उन्होंने अपना सारा जीवन ही अपने समय के अंधविश्वासों के विरुद्ध लगा दिया था। यदि स्वयं उनका हार्दिक विश्वास न होता कि गुरु बनाना आवश्यक है, तो वे किसी के कहने की परवाह न करते। किंतु उन्होंने स्वयं कहा है-

'गुरु बिन चेला ज्ञान न लहै।'
'गुरु बिन इह जग कौन भरोसा, करके संग ह्वै रहिए।'

परंतु वे गुरु और शिष्य का शारीरिक साक्षात्कार आवश्यक नहीं समझते थे। उनका विश्वास था कि गुरु के साथ मानसिक साक्षात्कार से भी शिष्यत्व का निर्वाह हो सकता है-

'कबीर गुरु बसै बनारसी सिष समंदर तीर।
बिर्सया नहीं बींसरे जे गुण होई सरीर।।'

कबीर अपने आप में शिष्य के लिए आवश्यक गुणों का अभाव नहीं समझते थे। वे उन एक आध में से थे जो गुरुज्ञान से अपना उद्धार कर सकते थे, जिनके संबंध में कबीर ने कहा है-

'माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवै पड़ंत।
कहै कबीर गुरु ज्ञान थैं, एक आध उबरंत।।'

मुसलमान कबीरपंथियों का कहना है कि कबीर ने सूफी फकीर शेख तकी से दीक्षा ली थी। कबीर ने अपने गुरु के बनारस निवासी होने का स्पष्ट उल्लेख किया है। इस कारण ऊँजी के पीर और तकी उनके गुरु नहीं हो सकते। 'घट घट है अविनासी सुनहु तकी तुम शेख' में उन्होंने तकी का नाम उस आदर से नहीं लिया है जिस आदर से गुरु का नाम लिया जाता है और जिसके प्रभाव से कबीर ने असंभव का भी संभव होना लिखा है-

'गुरु प्रसाद सूई कै नोकैं हस्ती आवै जाहि।'

बल्कि उल्टे वे तो तकी को ही उपदेश देते जान पड़ते हैं। यद्यपि यह वाक्य ग्रंथावली में कहीं नहीं मिलता फिर भी स्थान-स्थान पर 'शेख' शब्द का प्रयोग मिलता है, जो विशेष आदर से नहीं लिया गया है वरन् जिसमें फटकार की मात्रा ही अधिक दिखाई पड़ती है। अतः तकी कबीर के गुरु तो हो ही नहीं सकते, हाँ यह हो सकता है कि कबीर कुछ समय तक उनके सत्संग में रहे हों।

गृहस्थ जीवन

कबीर के साथ प्रायः लोई का भी नाम लिया जाता है। कुछ लोग कहते हैं कि यह कबीर की शिष्या थी और आजन्म उनके साथ रही! अन्य इसे उनकी परिणीता स्त्री बताते हैं और कहते हैं कि इसके गर्भ से कबीर को कमाल नाम का पुत्र और कमाली नाम की पुत्री हुई थी। कबीर ने लोई को संबोधन करके कई पद कहे हैं। एक पद में वे कहते हैं-

रे यामें क्या मेरा क्या तेरा, लाज न मरहिं कहत घर मेरा।
कहत कबीर सुनहु रे लोई, हम तुम विनसि रहेगा सोई।

इसमें लोई और कबीर का एक घर होना कहा गया है, जिससे लोई को कबीर की स्त्री होना ही अधिक संभव जान पड़ता है। कबीर ने कामिनी की बहुत निंदा की है। संभवतः इसीलिए लोई के संबंध में उनकी पत्नी के स्थान में शिष्या होने की कल्पना की गयी है-

'नारि नसावै तीनि सुख, जो नर पासै होइ।
भगति मुकति निज ज्ञान में, पैसि न सकई कोइ॥
एक कनक अरु कामिनी, विष फल कीएउ पाइ।
देखे ही थे विष चढ़े, खाए सूँ मरि जाइ॥'

परंतु कामिनी कांचन की निंदा के उनके वाक्य वैराग्यावस्था के समझने चाहिए। यह अधिक संगत जान पड़ता है कि लोई कबीर की पत्नी थी जो कबीर के विरक्त होकर नवीन पंथ चलाने पर उनकी अनुगामिनी हो गयी। कहते हैं कि लोई एक बनखण्डी वैरागी की परिपालिता कन्या थी। वह लोई उस वैरागी को स्नान करते समय लोई में लपेटी और टोकरी में रखी हुई गंगाजी में बहती हुई मिली थी। लोई में लपेटी हुई मिलने के कारण ही उसका नाम लोई पड़ा। बनखण्डी वैरागी की मृत्यु के बाद एक दिन कबीर उनकी कुटिया में गये। वहाँ अन्य संतों के साथ उन्हें भी दूध पीने को दिया गया, औरों ने तो दूध पी लिया,

पर कबीर ने अपने हिस्से का रख छोड़ा। पूछने पर उन्होंने कहा कि गंगापार एक साधु आ रहे हैं, उन्हीं के लिए रख छोड़ा है। थोड़ी देर में सचमुच एक साधु आ पहुँचा जिससे अन्य साधु कबीर की सिद्धई पर आश्चर्य करने लगे। उसी दिन से लोई उनके साथ हो ली।

कबीर की संतति के विषय में तो कोई प्रमाण नहीं मिलता। कहते हैं कि उनका पुत्र कमाल उनके सिद्धान्तों का विरोधी था। इसी से कबीर ने कहा–

'डूबा वंश कबीर का उपजा पूत कमाल।
हरि का सुमिरन छाँड़ि के, घर ले आया माल।'

इस दोहे के भी कबीरकृत होने में संदेह ही है। परंतु कमाल के कई पद ग्रंथसाहब में सम्मिलित किए गये हैं।

अलौकिक कृत्य

कबीर के विषय में कई आश्चर्यजनक कथाएँ प्रसिद्ध हैं, जिनसे उनमें लोकोत्तर शक्तियों का होना सिद्ध किया जाता है। महात्माओं के विषय में प्रायः ऐसी कल्पनाएँ की ही जाती हैं, यद्यपि इस युग में इस प्रकार की बातों पर शिक्षित और समझदार लोग विश्वास नहीं करते, परंतु फिर भी महात्मा गाँधी के विषय में भी असहयोग के समय में ऐसी कई गप्पें उड़ी थीं। यहाँ एक ही कथा दे देना पर्याप्त होगा, जिसके लिए कुछ स्पष्ट आधार है।

कहते हैं कि एक बार सिकंदर लोदी के दरबार में कबीर पर अपने आपको ईश्वर कहने का अभियोग लगाया गया। काजी ने उन्हें काफिर बताया और उनको मंसूर हल्लाज की भाँति मृत्युदण्ड की आज्ञा हुई। बेड़ियों से जकड़े हुए कबीर नदी में फेंक दिए गये। परंतु जिन कबीर को माया मोह की शृंखला न बाँध सकती थी, जिनकी पाप की बेड़ियाँ कट चुकी थीं उन्हें यह जंजीर बाँधे न रख सकी और वे तैरते हुए नदी तट पर आ खड़े हुए। अब काजी ने उन्हें धधकते हुए अग्निकुण्ड में डलवाया, किंतु उनके प्रभाव से आग बुझ गयी और कबीर की दिव्य देह पर आँच तक न आयी। उनके शरीर नाश के इस उद्योग के भी निष्फल हो जाने पर उन पर एक मस्त हाथी छोड़ा गया। उनके पास पहुँचकर हाथी उन्हें नमस्कार कर चिंघाड़ता हुआ भाग खड़ा हुआ। इसका आधार कबीर का यह पद कहा जाता है–

अहो मेरे गोव्यंद तुम्हारा जोर, काजी बकिवा हस्ती तोर,
बाँधि भुजा भले करि डारौं, हस्ती कोपि सूँड मैं मारौं।

भाग्यो हस्ती चीसा मारी, वा मूरति की मैं बलिहारी,
महावत तोकूँ मारी साँटी, इसही मराउँ धालौं काटी।
हस्ती न तोरै धरे ध्रियान, वाकै हिरदे बसै भगवान,
कहा अपराध संत हौं कीन्हाँ, बाँधि पोट कुंजर कू दीन्हा।
कुंजर पोट बहु बंदन करै, अँगहुँ न सूझै काजी अँधरै,
तीनि बेर पतियारा लीन्हा, मन कठोर अजहूँ न पतीनाँ।
कहै कबीर हमारे गोव्यंद, चौथे पद भै जन को गयंद।'

परंतु यह पद प्राचीन प्रतियों में नहीं मिलता। यदि यह कबीरजी का ही कहा हुआ है तो इस पद से केवल यह प्रकट होता है कि उनको मारने के तीनों प्रयत्न हाथी के द्वारा किए गये थे, क्योंकि इसमें उनके नदी में फेंके जाने या आग में जलाए जाने का कोई उल्लेख नहीं है। ग्रंथसाहब में कबीरजी का यह पद भी मिलता है, जो गंगा में जंजीर से बाँधकर फेंके जानेवाली कथा से संबंध रखता है–

'गंगा गुसाइन गहिर गँभीर। जंजीर बाँध करि खरे कबीर,
गंगा की लहरि मेरी टूटी जंजीर। मृगछाला पर बैठे कबीर।'

मृत्यु

कबीर का जीवन अंधविश्वासों का विरोध करने में ही बीता था। अपनी मृत्यु से भी उन्होंने इसी उद्देश्य की पूर्ति की। काशी मोक्षदापुरी कही जाती है। मुक्ति की कामना से लोग काशीवास करके यहाँ तन त्यागते हैं और मगहर में मरने का अनिवार्य परिणाम या फल नरकगमन माना जाता है। यह अंधविश्वास अब तक चला आता है। कहते हैं कि इसी के विरोध में कबीर मरने के लिए काशी छोड़कर मगहर चले गये थे। वे अपनी भक्ति के कारण ही अपने आपको मुक्ति का अधिकारी समझते थे। उन्होंने कहा भी है–

'जो काशी तन तजै कबीरा तौ रामहिं कहा निहोरा रे।'

इस अंधविश्वास का उन्होंने जगह-जगह खंडन किया है–

(क) 'हिरदै कठोर मरो बनारसी नरक न बंच्या जाई,
हरि को दास मरै जो मगहर सेन्या सकल तिहाई।'

(ख) 'जस कासी तस मगहर ऊसर हृदय रामसति होई।'

आदि ग्रंथ में उनका नीचे लिखा पद मिलता है–

'ज्यों जल छाड़ि बाहर भयो मीना। पूरब जनम हौं तप का हीना
अब कहु राम कवन गति मोरी। तजिले बनारस मति भइ थोरी,
बहुत बरष तप कीया कासी। मरनु भया मगहर को बासी
कासी मगहर सम बीचारी। ओछी भगति कैसे उतरसि पारी,
कहु गुर गति सिव संभु को जानै। मुआ कबीर रमता श्री रामै,'

कबीर के ये वचन मरने के कुछ ही समय पहले के जान पड़ते हैं। आरंभिक चरणों में जो क्षोभ प्रकट किया है, वह इसलिए कि बनारस उनका जन्मस्थान था जो सभी को अत्यंत प्रिय होता है। बनारस के साथ वे अपना संबंध वैसा ही घनिष्ठ बतलाते हैं जैसा जल और मछली का होता है। काशी और मगहर को वे अब भी समान समझते थे। अपनी मुक्ति के संबंध में उन्हें तनिक भी संदेह नहीं था, क्योंकि उन्हें परमात्मा की सर्वज्ञता में अटल विश्वास था, 'शिव सम को जनै' और राम का नाम जाप करते-करते वे शरीर त्यागने जा रहे थे 'मुआ कबीर रमत श्री राम।'

उनकी अन्त्येष्टि क्रिया के विषय में एक बहुत ही विलक्षण प्रवाद प्रसिद्ध है। कहते हैं हिंदू उनके शव का अग्निसंस्कार करना चाहते थे और मुसलमान उसे कब्र में गाड़ना चाहते थे। झगड़ा यहाँ तक बढ़ा कि तलवारें चलने की नौबत आ गयी। पर हिंदू-मुसलिम ऐक्य की प्रयासी कबीर की आत्मा यह बात कब सहन कर सकती थी। आत्मा ने आकाशवाणी की 'लड़ो मत! कफन उठाकर देखो।' लोगों ने कफन उठाकर देखा तो शव के स्थान पर एक पुष्प राशि पाई गयी, जिसको हिंदू-मुसलमान दोनों ने आधा-आधा बाँट लिया। अपने हिस्से के फूलों को हिन्दुओं ने जलाया और उनकी राख को काशी ले जाकर समाधिस्थ किया। वह स्थान अब तक कबीरचौरा के नाम से प्रसिद्ध है। अपने हिस्से के फूलों के ऊपर मुसलमानों ने मगहर ही में कब्र बनाई। यह कहानी भी विश्वास करने योग्य नहीं है, परंतु इसका मूल भाव अमूल्य है।

तात्विक सिद्धांत

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, कबीर ने चाहे जिस प्रकार हो रामानंद से रामनाम की दीक्षा ली थी, परंतु कबीर के राम रामानंद के राम से भिन्न थे। वे 'दुष्टदलन रघुनाथ' नहीं थे जिनके सेवक 'अंजनिपुत्र महाबलदायक, साधु-संत पर सदा सहायक' थे। राम से उनका अभिप्राय कुछ और ही था-

'दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना। राम नाम का मरम है आना।'

राम से उनका तात्पर्य निर्गुण ब्रह्म से है। उन्होंने 'निरगुण राम निरगुण राम कबीर राम, को सगुण और निर्गुण दोनों समझते हैं–

'अला एकै नूर उपनाया ताकी कैसी निंदा।
ता नूर थै जग कीया कौन भला कौन मंदा॥'

कबीर केवल शब्दों को लेकर झगड़ा करने वाले नहीं थे। अपने भाव व्यक्त करने के लिए उन्होंने उर्दू, फारसी, संस्कृत आदि सभी शब्दों का उपयोग किया है। अपने भाव प्रकट करने भर से उन्होंने मतलब रखा है। शब्दों के लिए वे विशेष चिन्तित नहीं दिखाई देते। ब्रह्म के लिए, राम, रहीम, अल्ला, सत्यनाम, गोब्यन्द, साहब, आप आदि अनेक शब्दों को उन्होंने प्रयोग किया है। उन्होंने कहा भी है 'अपरम्पार का नाउँ अनन्त।' ब्रह्म के निरूपण के लिए शब्दों के प्रयोग में जो अत्यंत शुद्धता और सावधानी बहुत आवश्यक है, कबीर में उसे पाने की आशा करना व्यर्थ है, क्योंकि कबीर का तत्त्वज्ञान दार्शनिक ग्रंथों के अध्ययन का फल नहीं है, वह उनकी अनुभूति और सारग्राहिता का प्रसाद है। पढ़े-लिखे तो वे थे ही नहीं, उन्होंने जो कुछ ज्ञानसंचय किया, वह सब सत्संग और आत्मानुभव से था। हिंदू-मुसलमान सभी संत फकीरों का इन्होंने समागम किया था, अतएव हिंदू भावों के साथ इनमें मुसलमानी भाव भी पाए जाते हैं। यद्यपि इनकी रचनाओं में भारतीय ब्रह्मवाद का पूरा-पूरा ढाँचा पाया जाता है, तथापि उसकी प्रायः वे ही बातें इन्होंने अधिक विस्तृत रूप से वर्णन के लिए उठाई हैं, जो मुसलमानी एकेश्वरवाद के अधिक मेल में थीं। इनका ध्येय सर्वदा हिंदू-मुस्लिम ऐक्य रहा है, यह भी इसका एक कारण है।

स्थूल दृष्टि से तो मूर्तिद्रोही एकेश्वरवाद और मूर्तिपूजक बहुदेववाद में बहुत बड़ा अंतर है, परंतु यदि सूक्ष्मदृष्टि से विचार किया जाए तो उनमें उतना अंतर नहीं देख पड़ेगा, जितना एकेश्वरवाद और ब्रह्मवाद में है, वरन् सारतः वे दोनों एक ही हैं, क्योंकि बहुत से देवी-देवताओं को अलग-अलग मानना और सबके गुरु गोवर्धनदास एक ईश्वर को मानना एक ही बात है। परंतु ब्रह्मवाद का मूलाधार ही भिन्न है। उसमें लेशमात्र भी भौतिकवाद नहीं है, वह जीवात्मा, परमात्मा और जड़ जगत् तीनों की भिन्न सत्ता मानता है, जब कि ब्रह्मवाद शुद्ध आत्मतत्त्व अर्थात् चैतन्य के अतिरिक्त और किसी का अस्तित्त्व नहीं मानता। उसके अनुसार आत्मा भी परमात्मा ही है, जड़ जगत् भी ब्रह्म है। कबीर में

भौतिक या बाह्यार्थवाद कहीं मिलता ही नहीं और आत्मवाद की उन्होंने स्थान-स्थान पर अच्छी झलक दिखाई है।

ब्रह्म ही जगत् में एकमात्र सत्ता है, इसके अतिरिक्त संसार में और कुछ नहीं है। जो कुछ है, ब्रह्म ही है। ब्रह्म ही से सबकी उत्पत्ति होती है और फिर उसी में सब लीन हो जाते हैं। कबीर के शब्दों में-

'पाणी ही ते हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ।
जो कुछ था सोई भया, अब कुछ कहा न जाइ॥'

विश्वविस्तृत सृष्टि और ब्रह्म का संबंध दिखाने के लिए ब्रह्मवादी दो उदाहरण दिया करते हैं। जिस प्रकार एक छोटे से बीज के अन्दर वट का बृहदाकार वृक्ष अंतर्हित रहता है, उसी प्रकार यह सृष्टि भी ब्रह्म में अंतर्हित रहती है, और जिस प्रकार दूध में घी व्याप्त रहता है उसी प्रकार ब्रह्म भी इस अंडकटाह में सर्वत्र व्याप्त रहता है। कबीर ने इसे इस तरह कहा है-

'खालिक खलक, खलक में खालिक सब जग रह्यो समाई।'

सर्वव्यापि ब्रह्म जब अपनी लीला का विस्तार करता है तब इस नामरूपात्मक जगत् की सृष्टि होती है, जिसे वह इच्छा होने पर अपने ही में समेट लेता है-

'इन मैं आप आप सबहिन में आप आप सूँ खेलै।
नाना भाँति घड़े सब भाँड़े रूप धरे धरि मेलै।'

वेदान्त में नामरूपात्मक जगत् से ब्रह्म का संबंध और कई प्रकार से प्रकट किया जाता है, जिनमें से एक प्रतिबिम्बवाद है, जिसका कबीर ने भी सहारा लिया है। प्रतिबिम्बवाद के अनुसार ब्रह्म बिम्ब है और नामरूपात्मक दृश्य जगत् उसका प्रतिबिम्ब है। कबीर कहते हैं-

'खण्डित मूल बिनास कहौ किम बिगतह कीजै।
ज्यूँ जल मैं प्रतिव्यंब, त्यूँ सकल रामहिं जाणीजै।'

'जो पिण्ड में है वही ब्रह्माण्ड में है' कहकर भी ब्रह्म का निरूपण किया जाता है परंतु केवल वाक्य के आश्रय से बनने वाले ज्ञानियों को इससे भ्रम हो सकता है कि पिण्ड और ब्रह्माण्ड ब्रह्म की अवस्थिति के लिए आवश्यक है। ऐसे लोगों के लिए कबीर कहते हैं-

'प्यंड ब्रह्मंड कथै सब कोई, वाकै आदि अरु अंत न होई।
प्यंड ब्रह्मंड छाड़ि जे कथिऐ, कहै कबीर हरि सोई।'

वेदान्त के 'कनककुण्डलन्याय' के अनुसार जिस प्रकार सोने के कुण्डल बनता है और उस कुण्डल के टूटने अथवा पिघल जाने पर वह सोना ही रहता है, उसी प्रकार नामरूपात्मक दृश्यों की उत्पत्ति ब्रह्म से होती है और ब्रह्म ही में वे समा जाते हैं–

'जैसे बहु कंचन के भूषन ये कहि गालि तवावहिंगे।
ऐसे हम लोक वेद के बिछुरे सुन्निहि माँहि समावेहिंगे।'

इसी प्रकार का जलतरंग न्याय भी है–

'जैसे जलहि तरंग तरंगनी ऐसे हम दिखलावहिंगे।
कहै कबीर स्वामी सुखसागर हंसहिं हंस मिलावेहिंगे।'

एक और तरह से कबीर ने भारतीय पद्धति से यह संबंध प्रदर्शित किया है–

'जल में कुंभ कुंभ में जल है, बाहरि भीतरि पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समानां, यह तत कथौ गियानी॥'

यह नामरूपात्मक दृश्य जो चर्म चक्षुओं को दिखाई देता है, जल में का घड़ा है, जिसके बाहर भी ब्रह्मरूप वारि है और अन्दर भी। बाह्यरूप का नाश हो जाने पर घड़े के अन्दर का जल जिस प्रकार बाहरवाले जल में मिल जाता है उसी प्रकार ब्रह्म रूप के अभ्यंतर का ब्रह्म भी अपने बाह्यस्थ ब्रह्म में समा जाता है।

सब प्रकार से यही सिद्ध किया गया है कि परिवर्तनशील नाशवान् दृश्यों का अध्यारोप जिस एक अव्यय तत्त्व पर होता है, वही वास्तव है। जो कुछ दिखाई देता है, वह असत्य है, केवल मायात्मक भ्रांतिज्ञान है। यह बात कबीर ने स्पष्ट ही कह दी है–

'संसार ऐसा सुपिन जैसा जीव न सुपिन समान।'

जो मनुष्य माया के इस प्रसार को सच्चा समझकर उसमें लिपट जाता है उसे शुद्ध हंस स्वरूप जीव अर्थात् ब्रह्म की प्राप्ति नहीं हो सकती।

बुद्धदेव के 'दुःख का सत्य' सिद्धांत के समान ही कबीर का भी सिद्धांत है कि यह संसार दुःख ही का घर है–

'दुनियाँ भाँड़ा दुःख का भरी मुँहामुँह मूष।
अदयां अलह राम की कुरहै उँणी कूष।'

संसार का यह दुःख मायाकृत है परंतु जो लोग माया में लिपटे रहते हैं वे इस दुःख में पड़े हुए भी उसे समझ नहीं सकते। इस दुःख का ज्ञान उन्हीं को

हो सकता है जिन्होंने मायात्मक अज्ञानावरण हटा दिया है। माया में पड़े हुए लोग तो इस दु:ख को सुख ही समझते हैं–

'सुखिया सब संसार है, खावै अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है जागै अरु रोवै।'

कबीर का दु:ख अपने लिए नहीं है, वे अपने लिए नहीं रोते, संसार के लिए रोते हैं क्योंकि उन्होंने साईं के सब जीवों के लिए अपना अस्तित्त्व समर्पित कर दिया था, संसार के लिए ईसामसीह की तरह उन्होंने अपने आपको मिटा दिया था।

माया में पड़ा हुआ मनुष्य अपनी ही बात सोचता रहता है, इसी से वह परमात्मा को नहीं पा सकता। परमात्मा को पाने के लिए इस 'ममता' को छोड़ना पड़ता है–

'जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।'

इसीलिए ज्ञानी माया का त्याग आवश्यक बताते हैं। परंतु माया का त्याग कुछ खेल नहीं है। बाहर से वह इतनी मधुर जान पड़ती है कि उसे छोड़ते ही नहीं बनता–

'मीठी मीठी माया तजी न जाई।
अग्यानी पुरिष को भोलि भोलि खाई।।'

माया ही विषय वासनाओं को जन्म देती है–

'इक डाइन मेरे मन बसै। नित उठि मेरे जिया को डसै,
या डाइन के लरिका पाँच रे। निसि दिन मोहि नचावै नाच रे।'

माया के पाँच पुत्र काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर हैं। मनुष्य के अध:पात के कारण ये ही हैं। आत्मा की परमात्मिकता को यही व्यवधान में डालते हैं। अतएव परम तत्त्वार्थियों को इनसे सावधान रहना चाहिए–

'पंच चोर गढ़ मंझा, गढ़ लूटै दिवस अरु संझा।
जो गढ़पति मुहकम होई, तौ लूटि न सकै कोई।।'

माया ही पाखंड की जननी है। अतएव माया का उचित स्थान पाखंडियों के ही पास है। इसलिए माया को संबोधन कर कबीर कहते हैं–

'तहाँ जाहु जहँ पाट पटंबर, अगर चन्दन घसि लीना।'

कर्मकांड को भी कबीर पाखंड ही के अंतर्गत मानते हैं क्योंकि परमात्मा की भक्ति का संबंध मन से है, मन की भक्ति तन को स्वयं ही अपने अनुकूल बना लेगी, भक्ति की सच्ची भावना होने से कर्म भी अनुकूल होने लगेंगे परंतु

केवल बाहरी माला जपने अथवा पूजापाठ करने से कुछ नहीं हो सकता। यह तो मानो और भी अधिक माया में पड़ना है–

'जप तप पूजा अरचा जोतिग जग बौराना।
कागद लिखि लिखि जगत भुलाना मन ही मन न समाना।।'

इसीलिए कबीर ने 'कर का मनका छाँड़ि के, मन का मनका फेर' का उपदेश दिया है। उनका मत है कि जो माया ऋषि, मुनि, दिगम्बर, जोगी और वेदपाठी ब्राह्मणों को भी धर पछाड़ती है, वही 'हरि भगत कै चेरी' है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि माया के सहचारियों का मिट जाना 'हरि भजन' का आवश्यक अंग है–

'राम भजै सो जानिये, जाकै आतुर नाहीं।
सत संतोष लीयै रहैं, धीरज मन माहीं।
जन कौं काम क्रोध व्यापै नहीं, त्रिष्णा न जरावै।
प्रफुलित आनंद मैं, गोब्यंद गुण गावै।'

माया से बचने का एक उपाय जो भक्तों को बताया गया है, वह संसार से विमुख रहना है। जैसे उलटा घड़ा पानी में नहीं डूबता परंतु सीधा घड़ा भरकर डूब जाता है, वैसे ही संसार के सम्मुख होने से मनुष्य माया में डूब जाता है, परंतु संसार से विमुख होकर रहने से माया का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता–

'औंधा घड़ा न जल मैं डूबे, सूधा सूभर भरिया।
जाकौं यह जग घिन करि चालै, ता प्रसादि निस्तरिया।'

माया का दूसरा नाम अज्ञान है। दर्पण पर जिस प्रकार काई लग जाती है, उसी प्रकार आत्मा पर अज्ञान का आवरण पड़ जाता है, जिससे आत्मा में परमात्मा का प्रदर्शन अर्थात् आत्मज्ञान दुर्लभ हो जाता है अतएव आत्मा रूपी दर्पण को निर्मल रखना चाहिए–

'जौ दरसन देख्या चाहिए, तौ दरपन मंजत रहिए।
जब दरपन लागै काई, तब दरसन किया न जाई।'

दरपन का यही माँजना हरिभक्ति करना है। भक्ति ही से मायाकृत अज्ञान दूर होता है और ज्ञानप्राप्ति के द्वारा अपने पराए का भेद मिटता है–

'उचित चेति च्यंति लै ताहीं। जा च्यंत आपा पर नाहीं।
हरि हिरदै एक ग्यान उपाया। ताथै छूट गयी सब माया।'

इस पद में 'च्यंति' शब्द विचारणीय है क्योंकि यह कबीर की भक्ति की विशेषता प्रकट करता है। यह कहना अधिक उचित होगा कि ज्ञानियों की

ब्रह्मजिज्ञासा और वैष्णवों की सगुणभक्ति की विशेष-विशेष बातों को लेकर कबीर ने अपनी निर्गुणभक्ति का भवन खड़ा किया अथवा वैष्णवों के तात्त्विक सिद्धान्तों और व्यावहारिक भक्ति के मिश्रण से कबीर की भक्ति का उद्‌भव हुआ है। सिद्धांत और व्यवहार में, कथनी और करनी में भेद रखना कबीर के स्वभाव के प्रतिकूल है। वैष्णवों में सदा से सिद्धांत और व्यवहार में भेद रहा है। सिद्धांत रूप से रामानुज जी ने विशिष्टाद्वैत वल्लभाचार्यजी ने शुद्धाद्वैत और माधवाचार्य ने द्वैत का प्रचार किया, पर व्यवहार के लिए सगुण भगवान की भक्ति का ध्येय ही सामने रखा गया।

सिद्धांत पक्ष का अज्ञेय ब्रह्म व्यवहार पक्ष में जाने बूझे मनुष्य के रूप में आ बैठा। हम दिखला चुके हैं कि कबीर अपने को वैष्णव समझते थे। परंतु सिद्धांत और व्यवहार का, कथनी और करनी का भेद वे पसन्द नहीं कर सकते थे, अतएव उन्होंने दोनों का मिश्रण कर अपनी निर्गुणभक्ति का भवन खड़ा किया जिसका मुसलमानी खुदावाद से भी बाहरी मेल था।

ज्ञानमार्ग के अनुसार निर्गुण निराकार ब्रह्म शुष्क चिन्तन का विषय है। कबीर ने इस शुष्कता को निकालकर प्रेमपूर्ण चिन्तन की व्यवस्था की है। कबीर के इस प्रेम के दो पक्ष हैं, पारमार्थिक और ऐहिक। पारमार्थिक अर्थ में प्रेम का अर्थ लगन है, जिसमें मनुष्य अपनी वृत्तियों को संसार की सब वस्तुओं से विमुख करके समेट लेता है और केवल ब्रह्म के चिन्तन में लगा देता है तथा ऐहिक पक्ष में उसका अभिप्राय संसार के सब जीवों से प्रेम और दया का व्यवहार करना है।

जिन्हें ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है केवल वे ही अमर हैं, जन्ममरण का भय उन्हें नहीं रह जाता। उनके अतिरिक्त और सब नश्वर हैं। कबीरदास कहते हैं कि मुझे ब्रह्म का साक्षात्कार हो गया है, इसीलिए वे अपने आप को अमर समझते हैं-

'हम न मरैं मरिहै संसारा, हम कूँ मिल्या जिवावनहारा। अब न मरौं मरनै मन मानां, तेई मुए जिन राम न जाना।'

मनुष्य की आत्मा ब्रह्म के साथ एक है और ब्रह्म ही एकमात्र चिरस्थायी सत्ता है, जिसका नाश नहीं हो सकता। अतएव मनुष्य की आत्मा का भी नाश नहीं हो सकता, यही कबीर के अस्तित्त्व का रहस्य है-

'हरि मरिहैं तो हम मरिहैं, हरि न मरै हम काहे कूँ मरिहैं।'

परंतु साक्षात्कार के पहले इस अमरत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती। परंतु उस प्रेम का मिलना सहज नहीं है, यह व्यक्तिगत साधना ही से उपलब्ध हो सकता है। यह पूर्ण आत्मोत्सर्ग चाहता है–

'कबीर भाटी कलाल की, बहुतक बैठे आइ।
सिर सौंपै सोई पिवै, नहिं तो पिया न जाइ।'

जब मनुष्य आत्मोत्सर्ग की इस चरम सीमा पर पहुँच जाता है, तब उसके लिए यह प्रेम अमृत हो जाता है–

'नीझर झरै अमीरस निकसै तिहि मदिरावलि छाका।'

इस प्रेमरूप मदिरा को मनुष्य यदि एक बार भी पी लेता है तो जीवनपर्यंत उसका नशा नहीं उतरता और उसे अपने तन मन की सब सुध–बुध भूल जाती है–

'हरि रस पीया जानिए, कबहुँ न जाय खुमार।
मैमंता घूमत रहे, नाहीं तन की सार।'

यह परमानंद की अवस्था है, जिसमें मनुष्य का लौकिक अंश, जो अज्ञानावस्था में प्रधान रहता है, किसी गिनती में नहीं रह जाता, उसे अपने में अंतर्हित आत्मतत्त्व का ज्ञान हो जाता है और उस ब्रह्म के साथ तादात्म्य की अनुभूति हो जाती है। इसी को साक्षात्कार होना कहते हैं। यह साक्षात्कार हो जाने पर अर्थात् ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होने पर मनुष्य ब्रह्म ही हो जाता है–ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति। उपनिषद् के 'तत्त्वमसि' अथवा 'सोऽहं' भाव का यही रहस्य है–

'तूँ तूँ करता तूँ भया, मुझमें रही न हूँ।
वारी फेरी बलि गयी, जित देखी तित तूँ।'

यह सच है कि ऐतिहासिक अर्थ में निराकार निर्गुण ब्रह्म प्रेम का आलम्बन नहीं हो सकता, केवल चिन्तन का ही विषय हो सकता है, परंतु उस निराकार की इस विश्वविस्तृत सृष्टि में उस मूल तत्त्व की सत्ता का जो आभास मिल जाता है, उसके कारण निर्गुण संसार के समस्त प्राणियों को अपने प्रेम और दया का पात्र बना लेता है, जब कि सगुण भक्त की बहुत कुछ भावुकता ठाकुर जी की पूर्ति के बनाव श्रृंगार और उनके भोगराग के आडम्बर ही में व्यय हो जाती है। इसी प्रेम ने कबीर को ऊँच नीच का भेदभाव दूर कर सबकी एकता प्रतिपादित करने की प्रेरणा दी थी–

'एक बूँद एक मल मूतर एक चाम एक गूदा।
एक जाति थै सब उपजा कौन ब्राह्मन कौन सूदा।'

जातिपाँति का ही नहीं, इसी से धर्माधर्म का भेद भी उन्हें अवास्तविक जँचा–

'कहैं कबीर एक राम जपहु रे, हिंदू तुरक न कोई।'

कबीर का प्रेम मनुष्यों तक ही परिमित नहीं है, परमात्मा की सृष्टि के सभी जीव जन्तु उसकी सीमा के अन्दर आ जाते हैं क्योंकि 'सबै जीव साईं के प्यारे हैं।' अँगरेजी के कवि कॉलरिज ने भी यही भाव इस प्रकार प्रकट किया है–

'ही प्रेथ बेस्ट हू लव्थ बेस्ट,
आल थिंग्स बोथ ग्रेट ऐंड स्माल,
फार दि डियर गॉड हू लब्थ अस,
ही मेड ऐंड लव्थ आल।'

कबीर का यह प्रेमतत्त्व, जिसका ऊपर निरूपण किया गया है, सूफियों के संसर्ग का फल है परंतु उसमें भी उन्होंने भारतीयता का पुट दे दिया है। सूफी परमात्मा को प्रियतमा के रूप में देखते हैं। उनके 'मजनूँ' को अल्लाह भी लैला नजर आता है परंतु कबीरदास ने परमात्मा को प्रियतम के रूप में देखा है, जो भारतीय माधुर्य भाव के सर्वथा मेल में है। फारस में विरह व्यथा, पुरुषों के मत्थे और भारत में स्त्रियों के ही मत्थे अधिक मढ़ी जाती है। वहाँ प्रेमी प्रिया को अपना प्रेम जताने के लिए उत्कट उद्योग करते हैं, और यहाँ प्रेमिका विरह से व्याकुल होकर मुरझाए हुए फूल की तरह अपनी सत्ता तक मिटा देती है। इसी से वहाँ उपासक की पुरुष रूप में और यहाँ स्त्री रूप में भावना की गयी है। परंतु कबीर के सूफियाना भावों में भारतीयता कूट कूटकर भरी हुई है।

इस प्रकार निर्गुणवाद और सगुणवाद की एकेश्वरवाद से बाहरी समता रखने वाली बातों के सम्मिश्रण और उसके प्रेमतत्त्व के योग से कबीर की भक्ति का निर्माण हुआ। कबीर का विश्वास है कि भक्ति से मुक्ति हो जाती है–

'कहै कबीर संसा नाहीं भगति मुगति गति पाई रे।'

परंतु भक्ति निष्काम होनी चाहिए। परमात्मा का प्रेम अपस्वार्थ की पूर्ति का साधन नहीं है, मनुष्य को यह न सोचना चाहिए कि उससे मुझे कोई फल मिलेगा। यदि फल की कामना हो गयी, तो वह भक्ति भक्ति न रह गयी और न उससे सत्य की प्राप्ति ही हो सकती है–

'जब लग है बैकुंठ की आशा। तब लग न हरि चरन निवासा।'

ब्रह्म लौकिक वासनाओं से परे है। व्यक्तिगत उच्चतम 'साधन से ही उसकी प्राप्ति हो सकती है, वह स्वयं भक्त के लिए विशेष चिन्तित नहीं रहता। क्योंकि भक्त भी ब्रह्म ही है। वह किसी की सहायता की अपेक्षा नहीं रखता, उसे अपने ब्रह्मत्व की अनुभूति भर कर लेनी पड़ती है, जो, जैसा कि हम देख चुके हैं, कोई खेल नहीं है। इसीलिए ब्रह्म को अवतार धारण करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। जो कबीर मनुष्य से ऐहिक अंश छुड़ाकर उसे ब्रह्मत्व तक पहुँचाना चाहते हैं, उनकी ब्रह्म में लौकिक भावनाओं का समावेश करके उसका अध:पात करने की व्यग्रता स्वाभाविक ही है–

'ना दसरथ घरि औतरि आवा, लंका का राव सतावा।
देवै कूप न औतरि आवा, ना जसवै गोद खिलावा।
ना वो ग्वालन के संग फिरिया, गोबरधन ले न कर धरिया।
बावन होय नहीं बलि छलिया, धरनी बेद ले न उधरिया।
गंडक सालिकराम न कोल, मछ कछ ह्वै जलहिं न डोला।
बद्री वैस्य ध्यान नहिं छावा, परसराम ह्वै खत्री न सँतावा।'

प्रतिमापूजन के वे घोर विरोधी थे। जिस परमात्मा का कोई आकार नहीं, देशकाल का जिसके लिए कोई आधार आवश्यक नहीं, उसकी मूर्ति कैसी? जगह–जगह पर उन्होंने मूर्तिपूजा के प्रति अपनी अरुचि प्रदर्शित की है–

'हम भी पाहन पूजते होते वन के रोझ।
सतगुरु की किरपा भई, डार्या सिर थैं बोझ।
सेवें सालिगराम कूँ मन की भ्रंति न जाइ।
सीतलता सुपिनै नहीं, दिन दिन अधकी लाइ।'

जिसका आकार नहीं, उसकी मूर्ति का सहारा लेकर उसकी प्राप्ति का प्रयत्न वैसा ही है जैसा झूठ के सहारे सच तक पहुँचने का प्रयत्न। असत्य से मन की भ्रान्ति बढ़ेगी ही, घट नहीं सकती और उससे जिज्ञासा की तृप्ति होना तो असंभव ही है।

मूर्तिपूजा में भगवान् की मूर्ति को जो भोग लगाने की प्रथा है, उसकी वे इस तरह हँसी उड़ाते हैं–

'लाडू लावर लापसी पूजा चढ़े अपार।
पूजि पुरारा ले चला दे मूरति के मुख छार।'

यद्यपि कबीर अवतारवाद और मूर्तिपूजा के विरोधी थे, तथापि हिंदूमत की कई बातें वे पूर्णतया मानते हैं। हिन्दुओं का जन्म–मरण–संबंधी सिद्धांत वे मानते

हैं। मुसलमानों की तरह वे एक ही जन्म नहीं मानते, जिसके बाद मरने पर प्राणी कब्र में पड़ा पड़ा कयामत तक सड़ा करता है, जब तक कि प्राणी पुनरुज्जीवित होकर खुदावंद करीम के सामने अपने अपने कर्मों के अनुसार अनन्त काल तक दोजख की आग में जलने अथवा बिहिश्त में हूरों और गिलमों का सुख भोगने के लिए पेश किए जायँ। एक स्थान पर, 'उबरहुगे किस बोले' कह कर कबीर ने इसी विश्वास की ओर संकेत किया है। परंतु यह उन्होंने बोलचाल के ढंग पर कहा है, सिद्धांत के रूप में नहीं।

बातें कुछ उसी प्रकार कही गयी हैं, जिस प्रकार सूर्य के चारों ओर पृथ्वी के घूमने के कारण दिन रात का होना मानने पर भी साधारण बोलचाल में यह कहना कि 'सूर्य उगता है'। सिद्धांत रूप से वे अनेक जन्म मानते हैं। 'जनम अनेक गया अरु आया'। इस जन्म में जो कुछ भोगना पड़ता है वह पूर्व जन्म के कर्मों का ही फल है, 'देखौ कर्म कबीर का कछू पूरब जनम का लेखा'। कबीर ने यह तो कहा है कि सृष्टि के सृजन और लय का कारण परमात्मा है, परंतु उन्होंने यह नहीं कहा कि सृष्टि की रचना कैसे और किस क्रम से हुई है, कौन तत्त्व पहले हुआ और कौन पीछे। इस विषय में वे शंका मात्र उठाकर रह गये हैं, उसका समाधान उन्होंने नहीं किया–

'प्रथमे गगन कि पुहुमि प्रथमे प्रभू, प्रथमे पवन की पांणीं।
प्रथमे चंद कि सूर प्रथमे प्रभू, प्रथमे कौन बिनांणी।
प्रथमे प्राण कि प्यंड प्रथमे प्रभू, प्रथमे रकत की रेंत।
प्रथमे पुरिष की नारी प्रथमे प्रभू, प्रथमे, बीज की खेत।
प्रथमे दिवस कि रैणि प्रथमे प्रभू, प्रथमे पाप की पुण्यं।
कहै कबीर जहाँ बसहु निरंजन, तहाँ कछु आहि कि सुन्यं।'

ऊपर हमने कबीर की रचना में वेदान्तसम्मत अद्वैतवाद की एक पूरी–पूरी पद्धति के दर्शन किए हैं, जिसे हम शुद्धाद्वैत नहीं मान सकते। शुद्धाद्वैत में माया ब्रह्म की ही शक्ति मानी जाती है, परंतु कबीर ने माया को मिथ्या या भ्रममात्र माना है, जिसका कारण अज्ञान है। यह शंकर का अद्वैत है, जिसमें आत्मा और परमात्मा परमार्थतः एक माने जाते हैं, परंतु बीच में अज्ञान के आ पड़ने से आत्मा अपनी पारमार्थिकता को भूल जाती है। ज्ञान प्राप्त हो जाने पर अज्ञानकृत भेद मिट जाता है और आत्मा को अपनी पारमात्मिकता की अनुभूति हो जाती है। यही बात हम कबीर में देख चुके हैं।

परंतु उन पर समय और परिस्थितियों का अलक्ष्य प्रभाव भी पड़ा था, जिसके कारण वे असावधानी में ऐसी बातें भी कह गये हैं, जो उनके अद्वैत सिद्धांत से मेल नहीं खाती। उन्होंने स्थान स्थान पर अवतारवाद का विरोध ही किया है, परंतु उनके नीचे लिखे पद से अवतारवाद का समर्थन भी होता है–

'बांधि मारि भावै देह जारि जै, हूँ राम छाड़ौ ताँ मेरे गुरुहिं यारि।
तब काटि खड़ग कोप्यो रिसाइ तोहि राखनहारौं मोंहि बताइ।
खम्भा मैं प्रगट्यौ गिलारि, हरनाकस मारौं नख विदारि।
महा पुरुष देवाधिदेव, नरयंध प्रकट किए भगति मेव।
कहै कबीर कोई लहैं न पारय प्रहिलाद उबारो अनेक बार।'

बात यह है कि उपासना के लिए उपास्य में कुछ गुणों का आरोप आवश्यक होता है, बिना गुणों के प्रेम का आलम्बन हो ही नहीं सकता। उपनिषदों तक में निराकार निर्गुण ब्रह्म में उपासना के लिए गुणों का आरोप किया गया है। एकेश्वरवादी धर्मों में जहाँ कट्टरपन ने परमात्मा में गुणों का आरोप नहीं करने दिया, वहाँ परमात्मा और मनुष्य के बीच में एक और मनुष्य का सहारा लिया गया है। ईसाइयों को ईसा और मुसलमानों को मुहम्मद का अवलम्बन ग्रहण करना पड़ा। भक्ति झोंक में कबीर भी जब सांसारिक प्रेममूलक सम्बन्धों के द्वारा परमात्मा की भावना करने लगे, तब परमात्मा में स्वयं ही गुणों का आरोप हो गया। माता पिता और प्रियतम निर्जीव पत्थर नहीं हो सकते। माता के रूप में परमात्मा की भावना करते हुए वे कहते हैं–

'हरि जननी मैं बालक तेरा। कस नहिं बकसहु अवगुण मेरा।'
अवतारवाद में यही सगुणवाद पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ है।

कबीर में कई बात ऐसी भी हैं, जिसमें दिखाई देने वाला विरोध केवल भाषा की असावधानी से आया है। कबीर शिक्षित नहीं थे, इसलिए उनकी रचनाओं में यह दोष क्षम्य है।

व्यावहारिक सिद्धांत

कबीरदासजी ने धार्मिक सिद्धान्तों के साथ-साथ उनकी पुष्टि के लिए अनेक स्थानों पर अलौकिक आचरण अथवा व्यवहारों का वर्णन किया है। यदि उनकी वाणी का पूरा-पूरा विवेचन किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि उनकी साखियों का विशेष संबंध लौकिक आचरणों से है तथा पदों का संबंध विशेष कर धार्मिक सिद्धान्तों तथा अंशतः लौकिक आचरण से है। लौकिक

आचरण की इन बातों को भी दो भागों में विभक्त कर सकते हैं, कुछ तो निवृत्तिमूलक हैं और कुछ प्रवृत्तिमूलक।

कबीर स्वतंत्र प्रकृति के मनुष्य थे। उनके चारों ओर शारीरिक दासता का घेरा पड़ा हुआ था। वे इस बात का अनुभव करते थे कि शारीरिक स्वातन्त्र्य के पहले विचार स्वातन्त्र्य आवश्यक है। जिनका मन ही दासता की बेड़ियों से जकड़ा हो, वह पाँवों की जंजीरें क्या तोड़ सकेगा। उन्होंने देखा था कि लोग नाना प्रकार के अंधविश्वासों में फँसकर हीन जीवन व्यतीत कर रहे हैं। अतः लोगों को इसी से मुक्त करने का प्रयत्न किया। मुसलमानों के रोजा, नमाज, हज, ताजिएदारी और हिन्दुओं के श्राद्ध, एकादशी, तीर्थव्रत, मंदिर सबका उन्होंने विरोध किया है। कर्मकांड की उन्होंने भर पेट निंदा की है। इस बाहरी पाखंड के लिए उन्होंने हिंदू मुसलमान दोनों को खूब फटकारें सुनाई हैं। धर्म को वे आडम्बर से परे एकमात्र सत्य सत्ता मानते थे, जिसके हिंदू मुसलमान आदि विभाग नहीं हो सकते। उन्होंने किसी नामधारी धर्म के बन्धन में अपने आपको नहीं डाला और स्पष्ट कह दिया है कि मैं न हिंदू हूँ न मुसलमान।

जिस सत्य को कबीर धर्म मानते हैं, वह सब धर्मों में है। परंतु इस सत्य को सबने मिथ्या विश्वास और पाखंड से परिच्छिन्न कर दिया है। इस बाहरी आडम्बर को दूर कर देने से धर्मभेद से समस्त झगड़े, बखेड़े दूर हो जाते हैं, क्योंकि उससे वास्तव में धर्मभेद ही नहीं रह जाता। फिर तो हिंदू मुस्लिम ऐक्य का प्रश्न स्वयं ही हल हो जाता है। पर एक अलग धार्मिक संप्रदाय के रूप में कबीरपंथ तो कबीर के मूल सिद्धान्तों के वैसे ही विरुद्ध है जैसे हिंदू अैर मुसलमान धर्म, जिनका उन्होंने जी भर खंडन किया है।

धार्मिक सुधार और समाज सुधार का घनिष्ठ संबंध है। धर्मसुधारक को समाज सुधारक होना पड़ता है। कबीर ने भी समाज सुधार के लिए अपनी वाणी का उपयोग किया है। हिन्दुओं की जातिपाँति, छुआछूत, खानपान आदि के व्यवहारों और मुसलमानों के चाचा की लड़की ब्याहने, मुसलमानी आदि कराने का उन्होंने चुभती भाषा में विरोध किया है और इनके विषय में हिंदू मुसलमान दोनों की जी भरकर धूल उड़ाई है। हिन्दुओं के चौके के विषय में वे कहते हैं–

'एकै पवन एक ही पाणी करी रसोई न्यारी जानी।
माटी सूँ माटी ले पोती, लागी कहौ कहाँ धूँ छोती।
धरती लीपि पवित्तर कीन्हीं, छोति उपाय लीक बिचि दीन्हीं।
याका हम सूँ कहो विचारा, क्यूँ भव तिरिहौ इहि आचारा।'

छुआछूत का उन्होंने इन शब्दों में खंडन किया है–

'काहैं की कीजै पाँडे छोति विचारा। छोतिहिं ते उपना संसारा
हमारे कैसे लोहू तुम्हारे कैसें दूध। तुम्ह कैसे ब्राह्मण पांडे हम कैसे सूद।
छोति छोति करता तुम्हहीं जाए। तौ ग्रभवास काहे को आये।
जनमत छोति मरत ही छोति। कहै कबीर हरि की निर्मल जोति।'

जन्म ही से कोई द्विज या शूद्र अथवा हिंदू या मुसलमान नहीं हो सकता। इसकी कबीर ने कितने सीधे किंतु मन में जम जानेवाले ढंग से कहा है–

'जौ तूँ बाँभन बंभनी जाया। तौ आन वाट ह्वै क्यों नहिं आया।'
'जौ तूँ तुरक तुरकनी जाया। तौ भीतर खतना क्यों न कराया।'

उच्चता और नीचता का संबंध उन्होंने व्यवसाय के साथ नहीं जोड़ा है क्योंकि कोई व्यवसाय नीच नहीं है। अपने को जुलाहा कहने में भी उन्होंने कहीं संकोच नहीं किया और वे स्वयं आजीवन जुलाहे का व्यवसाय करते रहे। वे उन ज्ञानियों में से नहीं थे जो हाथ पाँव समेट कर पेट भरने के लिए समाज के ऊपर भार बनकर रहते हैं। वे परिश्रम का महत्त्व जानते थे और अपनी आजीविका के लिए अपने हाथों का आसरा रखते थे।

परंतु अपनी आजीविका भर से वे मतलब रखते थे, धन सम्पत्ति जोड़ना वे उचित नहीं समझते थे। थोड़े ही में संतोष करने का उन्होंने उपदेश दिया है। जो कुछ वे दिन भर में कमाते थे, उसका कुछ अंश अवश्य साधु संतों की सेवा में लगाते थे और कभी-कभी सब कुछ उनकी सेवा में अर्पित कर डालते और आप निराहार रह जाते थे। कहते हैं, कि एक दिन वे गाढ़े का एक थान बेचने के लिए हाट गये। वस्त्र के अभाव से दुखी एक फकीर को देखकर उन्होंने उसमें से आधा उसे दे दिया। पर जब फकीर ने कहा कि मेरा तन ढकने के लिए वह काफी नहीं है, तब उन्होंने सारा उसे ही दे डाला और खाली हाथ घर चले आये। धन धरती जोड़ना कबीर की सन्तोषोवृत्ति के विरुद्ध था। उन्होंने कहा भी है–

'काहे कूँ भीत बनाऊँ टाटी, का जाणूँ कहँ परिहै माटी।
काहे कूँ मंदिर महल चिनाऊँ, मूवाँ पीछै घड़ी एक रहन न पाऊँ।'
काहे कूँ छाऊँ ऊँच उचेरा, साढै तीन हाथ घर मेरा।
कहै कबीर नर गरब न कीजै, जेता तन तेतीं भुइ लीजै।

कबीर अत्यंत सरल हृदय थे। बालकों में सरलता की पराकाष्ठा होती है, यह सब जानते हैं। इसका कारण वर्ड्सवर्थ के अनुसार यह है कि बालक में पारमार्थिकता अधिक रहती है। पर ज्यों-ज्यों बालक की अवस्था बढ़ती जाती है

त्यों-त्यों उसमें पारमार्थिकता की न्यूनता होती जाती है। इसीलिए अपने खोए हुए बालकत्व के लिए वर्ड्सवर्थ कवि क्षुब्ध हैं। परंतु कबीर कहते हैं कि यदि मनुष्य स्वयं भक्ति भाव से अपने मन को निर्मल कर परमात्मा की ओर मुड़े तो वह फिर से इस सरलता को प्राप्त कर बालक हो सकता है-

जों तन माहैं मन धरै, मन धरि निर्मल होइ।
साहिब सों सनमुख रहै, तौ फिरि बालक होइ।

कबीर की गर्वोक्तियों के कारण लोग उन्हें घमण्डी समझते हैं। ये गर्वोक्तियाँ कम नहीं हैं। उनके नाम से प्रसिद्ध नीचे लिखा पद, लोगों में बहुत प्रसिद्ध है-

'झीनी झीनी बीनी चदरिया।'
काहै कै ताना काहैं के भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया।
इंगला पिंगला ताना भरनी, सुखमन तार से बीनी चदरिया।
आठ कँवल दल चरख डोलै, पाँच तत्त गुन तीनी चदरिया।
साँइ को सियत मास दस लागे, ठोक ठोक कै बीनी चदरिया।
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़े, ओढ़ कै मैली कीनी चदरिया।
दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया।

कबीर की रचनायों मे ऐसी गर्वोक्तियों की कोई कमी नहीं है-

(क) 'हम न मरै मरिहै संसारा।'

(ख) 'एक न भूला दोइ न भूला-भूला सब संसारा।
एक न भूला दास कबीरा, जाकै राम अधारा।'

(ग) 'देखौ कर्म कबीर का, कछू पूरब जनम का लेखा।
जाका महल न मुनि लहै, सौ दोसत किया अलेखा।'

परंतु यह गर्व लोगों को नीचे देखनेवाला गर्व नहीं है-साक्षात्कारजन्य गर्व है, स्वामी के आधार का गर्व है, जो सबमें पारमात्मिकता का अनुभव करके प्राणिमात्र को समता की दृष्टि से देखता है। अपनी पारमात्मिकता की अनुभूति की गरमी में उनका ऐसा कहना स्वाभाविक ही है, जो उनके मुँह से अनुचित भी नहीं लगता। जो हो, कम से कम छोटे मुँह बड़ी बात की कहावत उनके विषय में चरितार्थ नहीं हो सकती। वे पहुँचे हुए महात्मा थे। उन्होंने स्वयं अपनी गिनती गोपीचन्द, भर्तृहरि और गोरखनाथ के साथ की है-

'गोरष भरथरि गोपीचन्दा। ता मन सो मिलि करै अनन्दा।
अकल निरंजन सकल सरीरा। ता मन सौं मिलि रहा कबीरा।'

परंतु इतने ऊँचे पद पर वे विनय के द्वारा ही पहुँच सके हैं। इसी से उनका गर्व उच्चतम मनुष्यता का प्रेममय गर्व है जिसकी आत्मा विनय है। सच्चे भक्त की भाँति उन्होंने परमात्मा के महत्त्व और अपनी हीनता का अनुभव किया है–

'तुम्ह समानि बाता नहीं, हम से नहीं पापी।'

स्वामी के सामने वे विनय के अवतार हैं–

'कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाउँ।
गलै राम की जेवड़ी, जित खैंचे तित जाउँ।'

उनकी विनय यहाँ तक पहुँची है कि वे बाट का रोड़ा होकर रहना चाहते हैं, जिस पर सबके पैर पड़ते हैं। परंतु रोड़ा पाँव में चुभकर बटोहियों को दुःख देता है, इसलिए वह धूल के समान रहना उचित समझते हैं। किंतु धूल भी उड़कर शरीर पर गिरती है और उसे मैला करती है, इसलिए पानी की तरह होकर रहना चाहिए जो सबका मैल धोवे। पर पानी भी ठंडा और गरम होता है, जो अरुचि का विषय हो सकता है। इसलिए भगवान् की ही तरह होकर रहना चाहिए। कबीर का गर्व और दैन्य दोनों मनुष्य को उसकी पारमात्मिकता की अनुभूति कराने वाले हैं।

कबीर पहुँचे हुए ज्ञानी थे। उनका ज्ञान पोथियों से चुराई हुई सामग्री नहीं थी और न वह सुनी सुनाई बातों का बेमेल भण्डार ही था। पढ़े लिखे तो वे थे नहीं, परंतु सत्संग से भी जो बातें उन्हें मालूम हुई, उन्हें वे अपनी विचारधारा के द्वारा मानसिक पाचन से सर्वदा अपना ही बना लेने का प्रयत्न करते थे। उन्होंने स्वयं कहा है 'सो ज्ञानी आप विचारै'। फिर भी कई बातें उनमें ऐसी मिलती हैं, जिनका उनके सिद्धान्तों के साथ मेल नहीं पड़ता। उनकी ऐसी उक्तियों को समय और परिस्थितियों का तथा भिन्न भिन्न मतावलम्बियों के संसर्ग का अलक्ष्य प्रभाव समझना चाहिए।

कबीर बहुश्रुत थे। सत्संग से वेदान्त, उपनिषदों और पौराणिक कथाओं का थोड़ा बहुत ज्ञान उनको हो गया था, परंतु वेदों का उन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं था। उन्होंने वेदों की जो निंदा की है, वह यह समझकर कि पण्डितों में जो पाखंड फैला हुआ है, वह वेदज्ञान के कारण ही है। योग की क्रियाओं के विषय में भी उनकी जानकारी थी। इंगला, पिंगला, सुषुम्ना षट्चक्र आदि का उन्होंने उल्लेख किया है, परंतु वे योगी नहीं थे। उन्होंने योग को भी माया में सम्मिलित किया है। केवल हिंदू मुसलमान दो धर्मों का उन्होंने मुख्यतया उल्लेख किया है पर

इससे यह न समझना चाहिए कि भारतवर्ष में प्रचलित और धर्मों से वे परिचित नहीं थे। वे कहते हैं–

'अरु भूले षटदरसन भाई। पाषंड भेष रहे लपटाई।
जैन बोध औरे साकत सैना। चारवाक चतुरंग बिहूना।
जैन जीव की सुधि न जाने। पाती तोरी देहुरै आनै।'

इससे ज्ञात होता है कि अन्य धर्मों से भी उनका परिचय था, पर कहाँ तक उनके गूढ़ रहस्यों को वे समझते थे यह नहीं विदित होता। जहाँ तक देखा जाता है, ऐसा जान पड़ता है कि ऊपरी बातों पर ही उन्होंने विशेष ध्यान दिया है। मार्मिक तात्त्विक बातों तक ये नहीं गये हैं। ईसाई धर्म का उनके समय तक इस देश में प्रवेश नहीं हुआ था पर बिलाइत का नाम उनकी साखी में एक स्थान पर अवश्य आया है–'बिन बिलाइत बड़ राज'। यह निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता कि 'बिलाइत' से उनका यूरोप के किसी देश से अभिप्राय था अथवा केवल विदेश से। कबीरदासजी ने शाक्तों की बड़ी निंदा की है। जैसे–

वैश्नो की छपरी भली, न साकत का बड़ागाँव।
साषत ब्राभण मति मिलै, वैषनों मिलै चंडाल।
अंक माल दे भेटिये, मानौ मिलै गोपाल।

कबीर रहस्यवादी कवि हैं। रहस्यवाद के मूल में अज्ञात शक्ति की जिज्ञासा काम करती है। संसारचक्र का प्रवर्तन किसी अज्ञान शक्ति के द्वारा होता है, इस बात का अनुभव मनुष्य अनादि काल से करता चला आया है। उस अज्ञात शक्ति को जानने की इच्छा सदैव मनुष्य को रही है और रहेगी परंतु वह शक्ति उस प्रकार स्पष्टता से नहीं दिखाई दे सकती, जिस प्रकार जगत् के अन्य दृश्य रूप, और न उसका ज्ञान ही उस प्रकार साधारण विचारधारा के द्वारा हो सकता है, जिस प्रकार इन दृश्य रूपों का होता है। अपनी लगन से जो इस क्षेत्र में सिद्ध हो गये हैं, उन्होंने जब–जब अपनी अनुभूति का निरूपण करने का प्रयत्न किया है, तब–तब अपनी उक्तियों की स्पष्टता देने में अपने आपको समर्थ नहीं पाया है। कबीर ने स्पष्ट कर दिया है कि परमात्मा का प्रेम और उसकी अनुभूति गूँगे के गुड़ सा है–

(क) 'अकथ कहानी प्रेम की, कछु कही न जाइ।
गूँगे केरी सरकरा, बैठा मुसकाइ।'

(ख) 'तजि बावै दाहिनै बिकार, हरि पद दिढ़ करि गहिए।
कहै कबीर गूँगे गुड़ खाया, बूझै तो का कहिए।'

यही रहस्यवाद का मूल है। वेद और उपनिषदों में रहस्यवाद की झलक विद्यमान है। गीता में भगवान् के मुँह से उनकी विभूति का जो वर्णन कराया गया है वह भी अत्यंत रहस्यपूर्ण है। परमात्मा को पिता, माता, प्रियतम, पुत्र अथवा सखा के रूप में देखना रहस्यवाद ही है, क्योंकि लौकिक अर्थ में परमात्मा इनमें से कुछ भी नहीं है। आदर्श पुरुषों में परमात्मा की विशेष कला का साक्षात्कार कर उनकी अवतार मानने के मूल में भी रहस्यवाद ही है। मूर्ति को परमात्मा मानकर उसे मस्तक नवाना आदिम रहस्यवाद है।

परमात्मा के पितृत्व की भावना बहुत प्राचीन काल से वेदों ही में मिलने लगती है। ऋग्वेद की एक ऋचा में 'योनः पिता जनिता यो विधाता' कहकर परमात्मा का स्मरण किया गया है। वेदों में परमात्मा को माता भी कहा गया है–'त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शकतो बभूविय'। परमात्मा के मातृपितृ से प्राणियों के भ्रातृत्व की भावना का उदय होता है। 'अज्येष्ठासौ अकनिष्ठासौ एते सभ्रातरौ'। बहुत पीछे के ईसाई ईश्वरवाद में परमात्मा के पितृत्व और प्राणियों के भ्रातृत्व की यही भावना पाई जाती है, अतएव पश्चिमी रहस्यवाद में भी इस भावना का प्राबल्य है। कबीर में भी यह भावना मिलती है–

'बाप राम राया अबहूँ सरन तिहारी।'

उन्होंने परमात्मा को 'माँ' भी कहा है–

'हरि जननी मैं बालिक तेरा।'

परंतु भारतीय रहस्यवाद की विशेषता सर्वात्मवादमूलक होने में है, जो भारतीयों की ब्रह्मजिज्ञासा का फल है। उपनिषदों और गीता का रहस्यवाद यही रहस्यवाद है। जिज्ञासु जब ज्ञानी की कोटि पर पहुँचकर कवि भी होना चाहता है, तब तो अवश्य ही वह इस रहस्यवाद की ओर झुकता है। चिन्तन के क्षेत्र का ब्रह्मवाद कविता के क्षेत्र में जाकर कल्पना और भावुकता का आधार पाकर इस रहस्यवाद का रूप पकड़ता है। सर्वात्मवादी कवि के रहस्योद्भावी मानस में संसार उसी रूप में प्रतिबिम्बित नहीं होता, जिस रूप में साधारण मनुष्य उसे देखता है। यह परमात्मा के साथ सारी सृष्टि का अखंड संबंध देखता है, जिसके चरितार्थ करने का प्रयत्न करते हुए जायसी ने जगत् के सब रूपों को दिखलाया है। जगत् के नाना रूप उसकी दृष्टि में परमात्मा से भिन्न नहीं हैं, उसी के भिन्न-भिन्न व्यक्त रूप हैं।

स्वातन्त्र्य के अवतार स्त्रोत्व का आध्यात्मिक मूल समझने वाले अंगरेजी के कवि शेली को भी सर्वात्मवादी रहस्यता ही 'मर्मर करते हुए काननों में झरनों

में, उन पुष्पों की परागगंध में, जो उस दिव्य चुम्बन के सुखस्पर्श से सोए हुए कुछ बरौते से मुग्ध पवन को उसका परिचय दे रहे हैं, इसी प्रकार मन्द या तीव्र समीर में, प्रत्येक आते जाते मेघखंड की झड़ी में, बसंतकालीन विहंगमों के कलकूजन में और सब ध्वनियों और स्तब्धता में भी प्रियतम की मधुर वाणी सुनाई दी है। कबीर में ऊपर परिगणित कुछ अन्य रहस्यवादी भावनाओं के होते हुए भी प्रधानता इसी रहस्यवाद की है। मुसलमान कवियों की प्रेमाख्यात परंपरा के जायसी एक जगमगाते रत्न हैं। वे रहस्यवादी कवियों की ही एक लड़ी हैं जिसमें सूफियों के मार्ग से होते हुए भारतीय सर्वात्मवाद आया है।

सर्वात्मवादमूलक रहस्यवाद में 'माधुर्य भाव का उदय हुआ, जो कबीर और प्रेमाख्यानक सब मुसलमान कवियों में विद्यमान है। वैष्णवों और सूफियों की उपासना माधुर्य भाव से युक्त होती है। दार्शनिकों ने परमात्मा को पुरुष और जगत् को स्त्रीरूप प्रकृति कहा है। माधुर्य भाव इसी का भावुक रूप है, जिसमें परमात्मा की प्रियतम के रूप में भावना की जाती है और जगत् के नाना रूप स्त्रीरूप में देखे जाते हैं। मीराबाई ने तो केवल कृष्ण को ही पुरुष माना है जगत् में पुरुष उन्हें और कोई दिखाई ही नहीं दिया। कबीर भी कहते हैं–

(क) कहै कबीर व्याहि चले हैं 'पुरुष एक अविनासी।'

(ख) 'सखी सुहाग राम मोहिं दीन्हा।'

इस तरह के एक दो नहीं कई उदाहरण दिए जा सकते हैं। राम की सुहागिन पहले अपना प्रेमनिवेदन करती है–

'गोकुल नायक बीठुला मेरो मन लागौ तोहि रे।'

यह जीवात्मा का परमात्मा में लगन लगने का आरंभिक रूप है। इसे ब्याह के पहले का पूर्वानुराग समझना चाहिए।

कभी वह वियोगिनी के रूप में प्रकट होती है और उस वियोगाग्नि में जले हुए हृदय के उद्‌गार प्रकट करती है–

'यह तन जालौं मसि करौं, लिखौ राम का नाउँ।
लेखणि करौं करंक की लिखि लिखि राम पठाउँ।'

परमात्मा के वियोग से जनित सारी सृष्टि का दुख कितना घना होकर कबीर के हृदय में समाया है।

राम की वियोगिन आकुलता से उन दिनों की बाट देखती है जब वह प्रियतम का आलिंगन करेगी–

'वै दिन कब आवैंगे भाई।
जा कारनि हम देह धरीं है, मिलिबौ अंग लगाई।'

यहाँ जीवात्मा के परमात्मा से मिलने की आकुलता की ओर संकेत है। इस आकुलता के साथ-साथ भय भी रहता है। सारा विश्व जिसका व्यक्त रूप है, उस प्रियतम से मिलने के लिए असाधारण तैयारी करने की आवश्यकता होती है। 'हरि की दुलहिन' को भय इस आशंका से होता है कि वह उतनी तैयारी कर सकेगी या नहीं। उसे अपने ऊपर विश्वास नहीं होता। फिर रहस्य केलि के समय प्रियतम के साथ किस प्रकार का व्यवहार करना होगा, यह भी नहीं जानती-

'मन प्रतीति न प्रेमरस ना इस तन में ढंग।
क्या जाणौ उस पीय सूँ कैसे रहसी रंग।'

इसमें साक्षात्कार की महत्ता का आभास है, जो एक साधारण घटना नहीं है। ज्यों-ज्यों जीवात्मा को अपनी पारमात्मिकता का अनुभव होता जाता है, त्यों-त्यों उसका भय जाता रहता है। लौकिक भाषा में इसी की ओर इस पद में इशारा है-

अब तोंहिं जान न दैहूँ राम पियारे। ज्यूँ भावै त्यूँ होहु हमारे।
यह प्रेम की ढिठाई है।

परामात्मा से मिलने के लिए ऐसी ऊँची गैल, राह रपटीली नहीं तै करनी पड़ती जहाँ 'पाँव नहीं ठहराय'। वह तो घर बैठे मिल जायँगे पर उसके लिए पहुँची हुई लगन चाहिए, क्योंकि परमात्मा तो हृदय ही में हैं-

'बहुत दिनन के बिछेरे हरि पाये। भाग बड़े घरि बैठे आये।'

कबीरदास के नाम से लोगों की जिह्वा पर जो यह पद-

'मो को कहाँ ढूँढे बन्दे मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवन, ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में।'

बहुत दिनों से चढ़ा चला आ रहा है, उसका भी यही भाव है। जायसी ने यही भाव यों प्रकट किया है-

'पिउ हिरदय महँ भेंट न होई। को रे मिलाय, कहौं केहि रोई।'

रहस्यमय उक्तियों की हृदयात्मकता उनके लोकनियोजित शब्दार्थ में नहीं है। उस अर्थ को मानने से उनकी रहस्यात्मकता जाती रहती है, उनका संकेत मात्र ग्रहण करना चाहिए। मूर्ति को परमात्मा मानकर उसका पूजन इसीलिए करना चाहिए कि ईश्वरप्राप्ति में आगे की सीढ़ी सहज में चढ़ सके, क्योंकि साधारणतः

सब लोग परमात्मा या ब्रह्म का ठीक-ठीक स्वरूप समझने में नितान्त असमर्थ होते हैं। अतः मूर्तिपूजा के द्वारा मानो मनुष्य को ब्रह्म के सभी साक्षात्कार की प्रारम्भिक शिक्षा मिलती है। उसके आगे बढ़कर सचमुच पत्थर को परमात्मा मानने से फिर कोई रहस्य नहीं रह जाता।

ईसाइयों ने परमात्मा के पितृत्व भाव की उसी समय इतिश्री कर दी, जब ईसा और लौकिक अर्थ में परमात्मा या पवित्रात्मा का पुत्र मान लिया। राम और कृष्ण को साक्षात् परमात्मा ही मानने के कारण तुलसी और सूर में अवतारवाद की मूलभूत रहस्यभावना नहीं आ पाई है। सखी संप्रदाय ने मनुष्यों को सचमुच स्त्री मानकर और उनके नाम भी स्त्रियों जैसे रखकर और यहाँ तक कि उनसे ऋतुमती स्त्रियों का अभिनय कराकर 'माधुर्य भाव' के रहस्यवाद को वास्तववाद का रूप दे दिया। रहस्यवाद के वास्तववाद में पतित हो जाने के कारण ही सदुद्देश्य से प्रवर्तित अनेक धर्म संप्रदायों में इन्द्रियलोलुपता का नारकीय नृत्य देखने में आता है।

रहस्यवादी कवियों का वास्तववादियों से इसी बात में भेद है कि वास्तववादी कवि अपने विषय का यथातथ्य वर्णन करते हैं, और रहस्यवादी केवल संकेत मात्र कर देते हैं, अपने वर्ण्यविषय का आभास भर दे देते हैं। उनमें जो यह धुँधलापन पाया जाता है, उसका कारण उनकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति है। परमात्मा की सत्ता का आभास मात्र ही दिया जा सकता है। इसके लिए वे व्यंजनावृत्ति से अधिकतर काम लिया करते हैं और चित्रधान उनका प्रधान उपादान होता है। उनकी बातें अन्योक्ति के रूप में हुआ करती हैं। किसी प्रत्यक्ष व्यापार के चित्र को लेकर वे उससे दूसरे परोक्ष व्यापार के चित्र की व्यंजना करते हैं। इसी से रहस्यवादी कवियों में वास्तववादियों की अपेक्षा कल्पना का प्राचुर्य अधिक होता है।

रसिकों की सम्मति में कबीर का रहस्यवाद रूखा है, उनका माधुर्य भाव भी उन्हें फीका लगता है, उनके चित्रों में उन्हें अनेकरूपता नहीं दिखाई देती। कबीर ने अपनी उक्तियों को काव्य की काटछाँट नहीं दी है, परंतु इसकी उन्हें जरूरत ही नहीं थी। इस बात का प्रयास वह करेगा जिसमें कुछ सार न हो।

कबीर में चित्रों की अनेकरूपता न देखना उनके साथ अन्याय करना है। ब्याह का ही दृश्य वे कई बार अवश्य लाए हैं, पर जैसा कि पाठकों को आगे चलने पर मालूम होता जायेगा, उनका रहस्यवाद माधुर्य भाव में ही नहीं समाप्त हो जाता। प्रकृति से चुने-चुने चित्र उनकी उक्तियों में अपने आप आ बैठे हैं।

हाँ, उन्होंने प्रयास करके अपनी उक्तियों को काव्य की मधुरता नहीं दी है। फिर भी उनकी ऊपरी सहृदयता न सही तो अनन्य हृदयता और तल्लीनता व्यर्थ कैसे जा सकती थी। जो उन्हें बिलकुल ही रूखा समझते हैं, उन्हें उनकी रहस्यमयी अन्योक्तियों को देखना चाहिए–

'काहे री नलिनी! तू कुमिलानी। तेरे ही नालि सरोवर पानी।
जल में उतपति जल में बास, जल में नलिनी तोर निवास।
ना तलि तपति न ऊपर आगि, तोर हेत कहु कासनि लागि।
कहै कबीर जे उदिक समान, ते नहीं मूए हमारे जान।'

कैसा मृदुल मनमोहक चित्र है! इसका सहज माधुर्य किसे न मोह लेगा। प्रकृति का प्रतिनिधि मनुष्य नलिनी है, जल ब्रह्म तत्त्व है। इसी में प्रकृति के नाना रूपों की उत्पत्ति होती है, यही पोषक तत्त्व है, जो मनुष्य और नाना रूपों में स्वयं विद्यमान है। इस जल की शीतलता के सामने कोई ताप ठहर नहीं सकता। यह तत्त्व समझकर इस पोषण सामग्री का उपयोग करने वाला (अर्थात् ज्ञानी) मर ही कैसे सकता है?

औद्यानिक भाषा में सांसारिक जीवन की नश्वरता का कितना प्रभावशाली आभास नीचे लिखे दोहे में है–

'मालिन आवत देखि करि, कलियाँ करीं पुकार।
फूले फूले चुन लिए, काल्हि हमारी बार।'

और देखिए–

'बाढ़ी आवत देखि करि, तरिवर डोलन लाग।
हम कटे कि कछु नहीं, पंखेरू घर भाग।'

बढ़ई काल है, वृक्ष का डोलना वृद्धावस्था का कंप है, पक्षी आत्मा है। यह डोलना आत्मा को इस बात की चेतावनी देता है कि शरीर के नाश का दुख न करके ब्रह्म तत्त्व में लीन होने का प्रबन्ध करोय पक्षी का घर भागना यही है। काटते समय पेड़ को हिलने और वृद्धावस्था में शरीर को काँपते किसने नहीं देखा होगा। परंतु किसलिए वह हिलता–काँपता है, उसका रहस्य कबीर ही जान पाए हैं। यह आभास किसको नहीं मिलता, पर कितने हैं, जो उनको समझ पाते हैं।

नाश नीची स्थितिवालों के लिए ही मुँह बाए नहीं खड़ा है, ऊँची स्थितिवाले भी उसी घाट उतरेंगे इस बात का संकेत यह दोहा देता है–

'फागुण आवत देखि करि, बन रूना मन माहिं।
ऊँची डाली पात हैं, दिन दिन पीले थाहिं।'

कबीर की चमत्कारपूर्ण उलटवाँसियाँ भी रहस्यपूर्ण हैं। कठोपनिषद् के अनुसार मनुष्य का शरीर रथ है, जिसमें इन्द्रियों के घोड़े जुते हैं, घोड़ों पर मन की लगाम लगी हुई है, जो सारथी रूपी बुद्धि के हाथ में है। 'परमपद' की पथिक आत्मा इस रथ पर सवार है, उसकी इच्छा के अनुसार उसका परिचालन होना चाहिए। शरीर सेवक है, आत्मा स्वामी है। यह स्वाभाविक क्रम है। परंतु जब स्वामी सो जाय, सारथी किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाय और घोड़ों की लगाम निरुद्देश्य ढीली पड़ जाय, तब यह क्रम उलट जाता है, स्वामी का स्थान सेवक ले लेता है। रथ के अधीन होकर स्वामी भटका करता है और प्रायः ऐसा होता है कि घोड़ों (इन्द्रियों) के मनमाने आचरण से रथ (शरीर) और स्वामी (आत्मा) दोनों को अनेक प्रकार के कष्ट भोगने पड़ते हैं। भवजाल में पड़े हुए मनुष्यों की इसी उलटी अवस्था को विशेषकर कबीर ने अपनी उलटवाँसियों द्वारा व्यंजित कर लोगों को आश्चर्य में डाला है–

'ऐसा अद्‌भुत मेरा गुरु कथ्या, मैं रह्या उमेषै।
मूसा हस्ती सौं लड़ै कोई विरला पेषै।
मूसा बैठा बाँबि मैं, लारै सापणि धाई।
उलटि मूसै सापिण गिली यह अचरज भाई।
चींटी परबत ऊपण्यां ले राख्यौ चौड़ै।
मुर्गा मिनकी सूँ लड़ै झल पाणीं दौड़े।
सुरही चूषै बछतलि, बछा दूध उतारै।
ऐसा नवल गुणी भया, सारदूलहि मारै।
भील लुक्या बन बीझ मैं, ससा सर मारै।
कहैं कबीर ताहि गुरु करौं, जो या पदहि विचारै।'

सबका कारण परब्रह्म किसी का कार्य नहीं है, इस बात का आभास देने वाला यह सांकेतिक पद कितना रहस्यपूर्ण है–बाँझ का पूत, बाप बिन जाया, बिन पाउँ तरवर चढ़िया।

अस बिन पाषर, गज बिन गुड़िया, बिन पंडै संग्राम लडिया,
बीज बिन अंकुर, पेड़ बिन तरवर, बिन सापा तरवर फलिया।
रूप बिन नारी, पुहुप बिन परिमल, बिन नीरै सर भरिया।।'

सभी संत कवियों के काव्य में थोड़ा–बहुत रहस्यवाद मिलता है। पर उनका काव्य विशेषकर कबीर का ही ऋणी है। बंगला के वर्तमान कवीन्द्र को भी कबीर का ऋण स्वीकार करना पड़ेगा। अपने रहस्यवाद का बीज उन्होंने

कबीर ही में पाया। परंतु उनमें पाश्चात्य भड़कीली पालिश भी है। भारतीय रहस्यवाद को उन्होंने पाश्चात्य ढंग से सजाया है। इसी से यूरोप में उनकी इतनी प्रतिष्ठा हुई है। जब से उन्हें नोबेल प्राइज (पुरस्कार) मिला तब से लोग उनकी गीतांजलि की बेतरह नकल करने पर तुले हुए हैं। हिंदी का वर्तमान रहस्यवाद अब तक नकल ही सा लगता है। सच्चे रहस्यवाद के आविर्भाव के लिए प्रतिभा की अपेक्षा होती है। कबीर इसी प्रतिभा के कारण सफल हुए हैं। पिंगल के नियमों को भंग करके खड़ा किया हुआ निरर्थक शब्दाडंबर रहस्यवादी कविता का आसन नहीं प्राप्त कर सकता है।

काव्यत्व

कबीर के काव्य के विषय में बहुत कुछ बातें उनके रहस्यवाद के अंतर्गत आ चुकी हैं, यहाँ पर बहुत कम कहना शेष है। कविता के लिए उन्होंने कविता नहीं की है। उनकी विचारधारा सत्य की खोज में बही है, उसी का प्रकाश करना उनका ध्येय है। उनकी विचारधारा का प्रवाह जीवनधारा के प्रवाह से भिन्न नहीं है। उसमें उनका हृदय घुला मिला है, उनकी प्रतिभा हृदयसमन्वित है। उनकी बातों में बल है, जो दूसरे पर प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकता। अक्खड़ ढंग से कही होने पर भी उनकी बेलाग बातों में एक और ही मिठास है, जो खरी-खरी बातें कहने वाले ही की बातों में मिल सकती है। उनकी सत्यभाषिता और प्रतिभा का ही फल है कि उनकी बहुत सी उक्तियाँ लोगों की जबान पर चढ़ कर कहावतों के रूप में चल पड़ी हैं। हार्दिक उमंग की लपेट में जो सहज विदग्धता उनकी उक्तियों में आ गयी है, वह अत्यंत भावापन्न है। उसी में उनकी प्रतिभा का चमत्कार है। शब्दों के जोड़ तोड़ में चमत्कार लाने के फेर में पड़ना उनको प्रकृति के प्रतिकूल था। दूर की सूझ जिस अर्थ में केशव, बिहारी आदि कवियों में मिलती है, उस अर्थ में उनमें पाना असंभव है। प्रयत्न उनकी कविता में कहीं नहीं दिखाई देता। अर्थ की जटिलता के लिए उनकी उलटवाँसियाँ केशव की शब्दमाया को मात करती हैं, परंतु उनमें भी प्रयत्न दृष्टिगत नहीं होता। रात-दिन आँखों में आने वाले प्रकृति के सामान्य व्यापारों के उलटे व्यवहार को ही उन्होंने सामने रखा है। सत्य के प्रकाश का साधन बनकर, जिसकी प्रगाढ़ अनुभूति उनकी हुई थी, कविता स्वयमेव उनकी जिह्वा पर बैठी है। इसमें संदेह नहीं कि कबीर में ऐसी भी उक्तियाँ हैं, जिनमें कविता के दर्शन नहीं होते और ऐसे पद्य कम नहीं हैं किंतु उनके कारण कबीर के वास्तविक काव्य का महत्व

कम नहीं हो सकता है, जो अत्यंत उच्चकोटि का है और जिसका बहुत कुछ माधुर्य रहस्यवाद के प्रकरण के अंतर्गत दिखाया जा चुका है।

जैसे कबीर का जीवन संसार से ऊपर उठा था, वैसे ही उनका काव्य भी साधारण कोटि से ऊँचा था। अतएव सीखकर प्राप्त की हुई रसिकता का काव्यानंद उनमें नहीं मिलता। परंपरा से बँधे हुए लोगों को काव्यजगत् में भी इन्द्रियलोलुपता का कीड़ा बनकर रहना भी भला लगता है। कबीर ऐसे लोगों की परितुष्टि की परवा कैसे कर सकते थे, जिनको निरपेक्षी के प्रति होनेवाला उनका प्रेम भी शुष्क लगता है। प्रेम की पराकाष्ठा आत्मसमर्पण का मानो काव्यजगत् में कोई मूल्य ही नहीं है।

कबीर ने अपनी उक्तियों पर बाहर से अलंकारों का मुलम्मा नहीं चढ़ाया है। जो अलंकार उनमें मिलते भी हैं वे उन्होंने खोज खोजकर नहीं बैठाए हैं। मानसिक कलाबाजी और कारीगरी के अर्थ में कला का उनमें सर्वथा अभाव है। 'बेसिर-पैर की बातें, 'वायवी अवस्तुओं' का स्थान और नामनिर्देश कर देने को कविकर्म कहकर शेक्सपियर ने कवियों को सन्निपात या पागलपन में बेसिर-पैर की बातें बकने वालों की श्रेणी में रख दिया है। जिन कवियों के संबंध में 'किं न जलपंति' कहा जा सकता है, उन्हीं का उल्लेख 'किं न खादंति' वाले वायसों के साथ हो सकता है। सच्ची कला के लिए तथ्य आवश्यक है। भावुकता के दृष्टिकोण से कला आडम्बरों के बन्धन से निर्मुक्त तथ्य है। एक विद्वान् कृत इस परिभाषा को यदि काव्यक्षेत्र में प्रयुक्त करें तो कम कवि सच्चे कलाकारों की कोटि में आ सकेंगे। परंतु कबीर का आसन उस ऊँचे स्थान पर अविचल दिखाई देता है। यदि सत्य के खोजी कबीर के काव्य में तथ्य की स्वतंत्रता नहीं मिलती तो और कहीं नहीं मिल सकती। कबीर के महत्त्व का अनुमान इसी से हो सकता है।

कबीर के काव्य में नीचे लिखी हुई खटकने वाली बातें भी हैं, जिनकी ओर स्थान-स्थान पर संकेत करते आये हैं-

1. एक ही बात को उन्होंने कई बार दुहराया है, जिससे कहीं-कहीं रोचकता जाती रहती है,
2. उनके ज्ञानीपन की शुष्कता का प्रतिबिम्ब उनकी भाषा का अक्खड़पन होकर पड़ा है,
3. उनकी आधी से अधिक रचना दार्शनिक पद्यमात्र है, जिसको कविता नहीं कहना चाहिए,

4. उनकी कविता में साहित्यिकता का सर्वथा अभाव है। थोड़ी सी साहित्यिकता आ जाने से परंपरानुबद्ध रसिकों के लिए उपालम्भ का स्थान न रह जाता,
5. न उनकी भाषा परिमार्जित है और न उनके ग्रंथ पिंगलशास्त्र के नियम के अनुकूल हैं।

कबीरदास छन्दशास्त्र से अनभिज्ञ थे, यहाँ तक कि वे दोहों को पिंगल की खराद पर न चढ़ा सके। डफली बजाकर गाने में जो शब्द जिस रूप में निकल गया, वही ठीक था। मात्राओं के घट-बढ़ जाने की चिंता करना व्यर्थ था। पर साथ ही कबीर में प्रतिभा थी, मौलिकता थी, उन्हें कुछ सन्देश देना था और उनके लिए शब्द की मात्रा गिनने की आवश्यकता न थी, उन्हें तो इस ढंग से अपनी बातें कहने की आवश्यकता थी, जो सुनने वालों के हृदय में पैठ जायँ और पैठकर जम जायँ। तिस पर वह हिंदी कविता के आरंभ के दिन थे। पर आजकल के रहस्यवादी काव्यों में न प्रतिभा के दर्शन होते हैं और न मौलिकता का आभास मिलता है। केवल ऊटपटाँग कह देने और भाषा तथा पिंगल की उपेक्षा दिखाने ही में उन आवश्यक गुणों के अभावों की पूर्ति नहीं हो सकती।

9

कबीर के दोहे

कस्तूरी कुन्डल बसे, मृग ढूढै बन माहि।
ऐसे घट-घट राम हैं, दुनिया देखे नाहि।।
कामी, क्रोधी, लालची, इनसे भक्ति न होय।
भक्ति करे कोई सूरमा, जाति वरन् कुल खोय।।
काल करै सो आज कर, आज करै सो अब।
पल में प्रलय होयगी, बहुरि करेगौ कब।।
कामी लज्जा ना करै, न माहें अहिलाद।
नींद न माँगै साँथरा, भूख न माँगे स्वाद।।
कांकर पाथर जोरि कै मस्जिद लई बनाय।
ता चढि मुल्ला बांग दे क्या बहरा हुआ खुदाय।।
करता था सो क्यों किया, अब करि क्यों पछताय।
बोवे पेड बबूल का, आम कहां से खाय।।
काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में प्रलय होएगी, बहुरि करेगा कब।।
कर बहियां बल आपनी, छोड़ बीरानी आस।
जाके आंगन नदि बहे, सो कस मरत प्यास।।
कथनी कथी तो क्या भया जो करनी ना ठहराइ।
कालबूत के कोट ज्यूं देखत ही ढहि जाइ।।

कबिरा गरब न कीजिये, कबहूं न हंसिये कोय।
अबहूं नाव समुंद्र में, का जाने का होय।।
कबीरा गर्व ना किजिये, उंचा देख आवास।
काल परौ भुइं लेटना, उपर जमसी घास।।
कबीरा खड़ा बजार में, सब की चाहे खैर।
ना काहू से दोस्ती, ना काहू से बैर।।
कबीरा सोई पीर हैं, जो जाने पर पीर।
जो पर पीर न जानई, सो काफिर बेपीर।।
कबीरा ते नर अँध है, गुरु को कहते और।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहीं ठौर।।
कबीरा सोया क्या करे, उठि न भजे भगवान।
जम जब घर ले जायेंगे, पड़ी रहेगी म्यान।।
कबीर सुता क्या करे, करे काज निवार।
जिस पंथ तू चलना, तो पंथ संवार।।
कबीर माला काठ की, कहि समझावै तोहि।
मन न फिरावै आपणा, कहा फिरावै मोहि।।
कबीर तूं काहै डरै, सिर पर हरि का हाथ।
हस्ती चढ़ि नहि डोलिये, कुकर भूखे साथ।।
कबीर घोड़ा प्रेम का, चेतनि चढ़ि असवार।
ग्यान षड्ग गहि, काल सिरि, भली मचाई मार।।
कबीर रेख स्यंदूर की, काजल दिया न जाइ।
नैनूं रमैया रमि रह्या, दूजा कहाँ समाइ।।
कबीर नवै सब आपको, पर को नवै न कोय।
घालि तराजू तौलिये, नवै सो भारी होय।।
सूरा के मैदान में, कायर का क्या काम।
कायर भागे पीठ दे, सूरा करे संग्राम।।
सतनाम जाने बिना, हंस लोक नहिं जाए।
ज्ञानी पंडित सूरमा, कर कर मुये उपाय।।
सुख में सुमिरन ना किया, दुःख में करते याद।
कह कबीर ता दास की, कौन सुने फरियाद।।
साईं इतना दीजिए जामें कुटुंब समाय।

मैं भी भूखा ना रहूं साधु न भूखा जाय।।
सुमिरन करहु राम का, काल गहै है केस।
न जानो कब मारिहै, का घर का परदेस।।
सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदय सांच हें, वाके हिरदय आप।।
सहज सहज सब कोऊ कहै, सहज न चीन्है कोइ।
जिन्ह सहजैं विषया तजी, सहज कहीजै सोइ।
सुखिया सब संसार है खावै और सोवै।
दुखिया दास कबीर है जागै अरू रोवै।।
सात समंदर की मसि करौं लेखनि सब बनराइ।
धरती सब कागद करौं हरि गुण लिखा न जाइ।।
सतगुरु मिला जु जानिये, ज्ञान उजाला होय।
भ्रम का भांड तोड़ि करि, रहै निराला होय।।
साधु ऐसा चाहिए जैसा सूप सुभाय।
सार-सार को गहि रहै थोथा देई उड़ाय।।
साधू गाँठ न बाँधई उदर समाता लेय।
आगे पाछे हरी खड़े जब माँगे तब देय।।
शीलवन्त सबसे बड़ा, सब रतनन की खान।
तीन लोक की सम्पदा, रही शील में आन।।
जो तोको कांटा बुवै, ताहि बोओ तू फूल।
ताहि फूल को फूल हैं, वाको हैं तिरसूल।।
जो जल बाढ़े नांव में, घर में बाढ़े दाम।
दोऊ हाथ उलीचिये, यही सयानो काम।।
जो गुरु ते भ्रम न मिटे, भ्रान्ति न जिसका जाय।
सो गुरु झूठा जानिये, त्यागत देर न लाय।।
जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ।
मैं बौरी बन डरी, रही किनारे बैठ।।
जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान।।
जग में बैरी कोई नहीं, जो मन शीतल होय।
यह आपा तो डाल दे, दया करे सब कोय।।

जहाँ काम तहाँ नाम नहिं, जहाँ नाम नहिं वहाँ काम।
दोनों कबहूँ नहिं मिले, रवि रजनी इक धाम।।
जहां दया तहं धर्म है, जहां लोभ तहं पाप।
जहां क्रोध तहं काल है, जहां क्षमा आप।।
जैसे तिल में तेल है, ज्यों चकमक में आग।
तेरा साई तुझ में है, तू जाग सके तो जाग।।
जब मैं था हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।
सब अंधियारा मिटी गया, जब दीपक देख्या माहिं।।
जब तू आया जगत् में, लोग हसें तू रोए।
ऐसी करनी ना करी, पाछे हसें सब कोए ।।
जीवत समझे जीवत बुझे, जीवत ही करो आस।
जीवत करम की फाँस न काटी, मुए मुक्ति की आस।।
जेहि खोजत ब्रह्मा थके, सुर नर मुनि अरु देव।
कहै कबीर सुन साधवा, करु सतगुरु की सेव।।
ज्यों नैनों में पुतली, त्यों मालिक घट माहिं।
मूरख लोग ना जानहीं, बाहिर ढूंढ़न जाहिं ।।
पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ, पंड़ित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंड़ित होय।।
प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रूचौ, सीस देइ ले जाय।।
पतिबरता मैली भली, गले काँच को पोत।
सब सखियन में यों दिपै, ज्यों रवि ससि की जोत।।
पूरब दिसा हरि को बासा, पश्चिम अलह मुकामा।
दिल महं खोजु, दिलहि में खोजो यही करीमा रामा।।
पाँच पहर धन्धे गया, तीन पहर गया सोय।
एक पहर हरि नाम बिन, मुक्ति कैसे होय।।
पहले अगन बिरहा की, पाछे प्रेम की प्यास।
कहे कबीर तब जानिए, नाम मिलन की आस।।
पाहन पूजै हरि मिले, तो मैं पूजूं पहार।
ताते यह चाकी भली, पीस खाए संसार।।
परनारी का राचणौ, जिसकी लहसण की खानि।

खूणैं बेसिर खाइय, परगट होइ दिवानि।।
परनारी राता फिरैं, चोरी बिढ़िता खाहिं।
दिवस चारि सरसा रहै, अति समूला जाहिं।।
पूरा सतगुरु न मिला, सुनी अधूरी सीख।
स्वाँग यती का पहिनि के, घर घर माँगी भीख।।
चलती चक्की देखि कै, दिया कबीरा रोय।
दुइ पट भीतर आइ कै, साबित गया न कोय।।
चारिउं वेदि पठाहि, हरि सूं न लाया हेत।
बालि कबीरा ले गया, पंडित ढूंढे खेत।।
चाह गई चिंता मिटी, मनुआ बेपरवाह।
जिसको कुछ नहीं चाहिए वह शहनशाह।।
माली आवत देख कै कलियन करी पुकार।
फूली फूली चुन लिए, काल्हि हमारी बार।।
माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर।
कर का मन का डार दे, मन का मनका फेर।।
माया मरी न मन मरा, मर-मर गए शरीर।
आशा तृष्णा न मरी, कह गए दास कबीर।।
माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि ईवै पडंत।
कहै कबीर गुरु ज्ञान ते, एक आध उबरंत।।
मन माया तो एक हैं, माया नहीं समाय।
तीन लोक संसय परा, काहि कहूं समझाय।।
माटी कहे कुम्हार से, तु क्या रौंदे मोय।
एक दिन ऐसा आएगा, मैं रौंदूगी तोय।।
मूरख संग ना कीजिए, लोहा जल ना तिराइ।
कदली, सीप, भुजंग-मुख, एक बूंद तिहँ भाइ।।
मांगण मरण समान है, बिरता बंचौ कोई।
कहै कबीर रघुनाथ सूं, मति रे मंगावे मोहि।।
मुंड मुंडावत दिन गए, अजहूँ न मिलिया राम।
राम नाम कहू क्या करे, जे मन के औरे काम।।
मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा गुरु पाँव।
मूल नाम गुरु वचन है, मूल सत्य सतभाव।।

एक राम दशरथ का प्यारा, एक राम का सकल पसारा।
एक राम घट घट में छा रहा, एक राम दुनिया से न्यारा।।
एकै साध सब सधै, सब साधे सब जाय।
जो तू सींचे मूल को, फूले फल अघाय।।
ऐसी बानी बोलिए, मन का आपा खोय।
आपन को सीतल करे, और हु सीतल होय।।
एक कहूँ तो है नहीं, दो कहूँ तो गारी।
है जैसा तैसा रहे, कहे कबीर बिचारी।।
धरती सब कागद करूं, लेखनी सब बनराय।
सात सुमुद्र की मसि करूं, गुरु गुण लिखा न जाय।।
धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आए फल होय।।
रज गुन ब्रह्मा तम गुन संकर सत्त गुन हरि सोई।
कहै कबीर राम रमि रहिये हिन्दू तुरक न कोई।।
रात गंवाई सोय के, दिवस गंवाया खाय।
हीरा जन्म अमोल था, कोड़ी बदले जाय।।
लाली मेरे लाल की जित देखों तित लाल।
लाली देखन मैं चली, हो गई लाल गुलाल।।
लूट सके तो लूट ले, राम नाम की लूट।
पाछे फिरे पछताओगे, प्राण जाहिं जब छूट।।
ऊंचे कुल का जनमिया, जे करणी ऊंच न होइ।
सुबण कलस सुरा भरा, साधू निन्दै सोइ।।
उठा बगुला प्रेम का तिनका चढ़ा अकास।
तिनका तिनके से मिला तिन का तिन के पास।।
गुरु गोबिंद दोऊ खड़े, का के लागूं पाय।
बलिहारी गुरु आपनै, गोबिंद दियो मिलाय।।
गुरु कीजिए जानि के, पानी पीजै छानि।
बिना विचारे गुरु करे, परे चौरासी खानि।।
गुरु किया है देह का, सतगुरु चीन्हा नाहिं।
भवसागर के जाल में, फिर फिर गोता खाहि।।
गुरु लोभ शिष लालची, दोनों खेले दाँव।

दोनों बूड़े बापुरे, चढ़ि पाथर की नाँव।।
गाँठि न थामहिं बाँध ही, नहिं नारी सो नेह।
कह कबीर वा साधु की, हम चरनन की खेह।।
हीरा पड़ा बाजार में, रहा छार लपटाय।
बहुतक मूरख चलि गए, पारख लिया उठाय।।
तिनका कबहुँ ना निंदये, जो पाँव तले होय।
कबहुँ उड़ आँखों पड़े, पीर घनेरी होय।।
बुरा जो देखन मैं चल्या, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसा बुरा न कोय।।
बड़ा हुआ तो क्या हुआ जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं फल लागे अति दूर ।।
बोली एक अनमोल है, जो कोई बोलै जानि।
हिये तराजू तौल के, तब मुख बाहर आनि।।
दोष पराए देख कर चल्या हंसत हंसत।
अपनै चीति न आबई जाको आदि न अंत।।
दर्शन करना है तो, दर्पण माँजत रहिये।
दर्पण में लगी कई, तो दर्श कहाँ से पाई।।
दुःख में सुमिरन सब करें सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे दुःख काहे को होय।।
नहा धोये क्या हुआ, जो मन मैल न जाय।
मीन सदा जल में रहै, धोये बास न जाय।।
निंदक नियरे राखिए, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी, साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय।।
आए हैं सो जाएँगे, राजा रंक फकीर।
एक सिंहासन चढ़ि चले, एक बँधे जात जंजीर।।
अकथ कहानी प्रेम की, कुछ कही न जाये।
गूंगे केरी सर्करा, बैठे मुस्काए।।
अति का भला न बोलना, अति की भली न चूप।
अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप।।
यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिलै, तो भी सस्ता जान।।

10

बीजक

'बीजक' कबीर वाणी का प्रामाणिक ग्रन्थ कहा जाता है। यह कबीर द्वारा ही लिखा गया है, इसमें सन्देह है। कबीर ने जिस भाषा और शैली में अपनी वाणी कही है, वह उनके साहित्यिक एवं शास्त्रीय निष्ठा का प्रमाण नहीं देती। कबीर की साखी यह कहती है– कबीर संसा दूर करु, पुस्तक देई बहाय।

और जनश्रुति यह कहती है कि मसि कागद छूयो नहीं, कलम गही नहिं हाथ। तब उन्होंने बीजक ग्रन्थ लिखा होगा, इसमें बहुत सन्देह होता है।

मौखिक उपदेश

कबीर ने तो अपने सिद्धान्त और उपदेश मौखिक रूप में ही दिये। उन्होंने सदैव 'कहै कबीर सुनो भाई सन्तो' ही कहा, 'लिखै कबीर पढ़ो भाई सन्तो' जैसी पंक्ति कभी नहीं लिखी। अतः जो वाणी उन्होंने कही, वह मौखिक रूप में ही प्रचारित हुई। यह बात अवश्य कही जा सकती है कि जो कुछ भी उन्होंने कहा, उसे उनके शिष्यों ने लिखा और कबीर के नाम से प्रचारित किया। यह भी सम्भव है कि शिष्यों की बहुत सी वाणी कबीर के नाम से ही प्रचारित हुई हो। यही कारण है कि आज कबीर के नाम से लगभग 61 ग्रन्थ मिलते हैं, जिनमें से काफी संख्या ऐसे ग्रन्थों की है, जो कबीर के बाद लिखे गये और जिनमें उन सिद्धान्तों की चर्चा है, जिनमें बाह्याचार और कर्मकाण्ड का निरूपण विशेष रूप

से हुआ। कबीर ने बाह्याचार और कर्मकाण्ड की सदैव ही निन्दा की। अतः वे ग्रन्थ कबीर द्वारा निर्मित नहीं हो सकते।

बीजक मूल ग्रंथ

कबीर पन्थियों तथा सामान्य पाठकों में 'बीजक' कबीर साहब के सिद्धान्तों का मूल ग्रन्थ माना जाता है। कहा जाता है कि चोरी से उनका एक भक्त भगवानदास 'बीजक' की प्रति को ले भागा। कहते हैं बीजक लेकर भागने के कारण ही यह भगवानदास 'भग्गू' के नाम से निन्दित हुआ। 'बीजक' की टीका लिखने वाले 'विश्वनाथ सिंह जू देव' ने कबीर साहब के द्वारा कही गयी बीजक के सम्बन्ध में कुछ चौपाइयों का निर्देश किया है–

'भग्गूदास की खबरि जनाई। ले चरनामृत साधु पियाई।।
कोऊ आप कह कालिंजर गयऊ। बीजक ग्रन्थ चोराइ ले गयऊ।।
सतगुरु कह वह निगुरा पन्थी। काह भयौ लै बीजक ग्रन्थी।।
चोरी करि वै चोर कहाई। काह भयो बड़ भक्त कहाई।
बीजमूल हम प्रगट चिह्नाई। बीज न चीह्नो दुर्मीत लाई।।'

कबीरपन्थी 'महात्मा पूरन साहेब' ने कबीर साहब के मुख्य ग्रन्थ मूल बीजक की जो टीका लिखी है, उसके अनुसार 'बीजक' के निम्नलिखित ग्यारह अंगों का निर्देश और विस्तार निम्न प्रकार से दिया है–

रमैनी–84,
शब्द–115,
ज्ञान चौंतीसा –34,
विप्रमतीसी–1,
कहरा–12,
वसन्त–12,
चाचर–2,
बेलि–2,
बिरहुली–1,
हिंडोला–3,
साखी–353।

इस भाँति बीजक में छन्दों की कुल संख्या 619 है।

'बीजक' शब्द तांत्रिक उपासना से सम्बद्ध ज्ञात होता है। बौद्ध तंत्र में जिन सूत्रों से रहस्यमय तत्त्व की उपलब्धि होती है, उन्हें 'बीज सूत्र' या 'बीजाक्षर' का नाम दिया गया। इसी 'बीजाक्षर' में मन्त्रों की सृष्टि मानी गयी। इस भाँति बीजाक्षर से शब्द तत्त्व का भी बोध हुआ। बौद्ध धर्म की वज्रयानी परम्परा से कालान्तर में सन्त सम्प्रदाय के स्रोत मिलते हैं। इस सन्त सम्प्रदाय में शब्द का बहुत महत्त्व है। सन्त सम्प्रदाय के काव्य में 'शब्द' और 'साखी' का विशिष्ट अर्थ और महत्त्व समझा जाता है। इसी 'बीजक' ग्रन्थ में 'रमैनी' (37) में 'बीजक' के सम्बन्ध में विवेचन किया गया है–

'एक सयान सयान न होई। दूसर सयान न जाने कोई।।
तीसर सयान सयान दिखाई। चौथे सयान तहाँ ले जाई।।
पचये सयान न जाने कोई। छठये मा सब गैल बिगोई।।
सतयाँ सयान जो जानहु भाई। लोक वेद मों देउ देखाई।।'
'बीजक वित्त बतावै। जो वित्त गुप्ता होय।
ऐसे शब्द बतावै जीवको। बुझे बिरला कोय।'–साखी

उपर्युक्त उद्धरण में 'बीजक' का सम्बन्ध 'शब्द' से ही जोड़ा गया है। सयान की मीमांसा निम्न प्रकार से समझी जा सकती है–

एक सयान–ब्रह्म,
दूसर सयान–माया,
तीसर सयान–त्रिगुण–(भक्ति, ज्ञान और योग),
चौथे सयान–चारों वेद,
पचयें सयान– पाँचों तत्त्व (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी),
छठयें सयान–मन के दोष (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर),
सतयाँ सयान–शब्द।

इस भाँति 'बीजक' वास्तविक तत्त्व का बोधक है। यह तत्त्व संसार में गुप्त रहता है। 'बीजक' के द्वारा ही ब्रह्म के वास्तविक तत्त्व (शब्द) का बोध होता है, जिससे समस्त सृष्टि का निर्माण हुआ है।

बीजक का मुद्रण

कबीर की वाणियों में 'बीजक' का मुद्रण सबसे पहले हुआ। इसका कारण है कि कबीरपन्थी 'बीजक' को सर्वाधिक प्रामाणिक तथा आदरणीय ग्रन्थ मानते हैं। रीवा नरेश 'श्री विश्वनाथ सिंह' की टीका के साथ 'बीजक' 1872 ई. से

पहले मुद्रित हुआ था। पादरी प्रेमचन्द, पूर्णदास, पादरी अहमदशाह, महर्षि शिवव्रत लाल, विचारदास, साधु लखन दास, हनुमान दास, भगवान साहब, गोस्वामी साहब, महाराज राघवदास, हंसदास आदि अनेक विद्वानों तथा सन्तों ने 'बीजक' का मूलपाठ टीका सहित सम्पादित करके प्रकाशित कराया है।

अनुवाद

अहमदशाह ने 'बीजक ऑफ कबीर' का अंग्रेजी अनुवाद किया है।

हनुमान दास ने संस्कृत में 'बीजक' की व्याख्या प्रस्तुत की है। इसका प्रकाशन फतुहा पटना से हुआ है।

कबीर की सम्पूर्ण ग्रन्थावली का सम्पादन **श्यामसुन्दर दास** ने किया है। इसका प्रकाशन 1928 ई. में नागरी प्रचारिणी सभा से हुआ।

कबीर रचनावली का सम्पादन **अयोध्यासिंह उपाध्याय** ने किया है। इनके अलावा पदों तथा साखियों के अलग-अलग संकलन प्रकाशित हैं। ज्यादातर संकलन कबीरपन्थ से जुड़े सन्तों ने ही किया है।

'आचार्य क्षितिमोहन सेन' ने कबीर शीर्षक से चार भागों में कबीर की रचनाओं का संकलन किया है।

डॉक्टर पारसनाथ तिवारी ने सैंकड़ों ग्रन्थों की छानबीन करके ग्रन्थों को कबीर कृत न होने का प्रमाण प्रस्तुत किया है। तिवारी जी ने दादू पंथी शाखा की पाँच प्रतियों, निरंजनी शाखा की एक प्रति, गुरु ग्रन्थ साहब, दो बीजकों, दो शब्दावलियों, तीन साखी ग्रन्थों, एक सर्वंगी, एक गुणगजनामा तथा आचार्य सेन की रचनाओं की तुलना करके कबीर ग्रन्थावली का मूल पाठ निर्धारित करने का प्रयत्न किया है।

भाषा

निरंजनी दोनों शाखाओं से सम्बन्धित प्रतियों पर राजस्थानी भाषा का व्यापक प्रभाव है। इनकी निरन्तर प्रतिलिपियाँ होती रहीं और भाषा का रूपान्तरण होता रहा। साखियों पर राजस्थानी का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक है। पदों (सबद) तथा रमैनियों पर यह प्रभाव कम है। डॉक्टर पारसनाथ तिवारी ने इस भेद का कोई कारण निर्दिष्ट नहीं किया। वास्तव में साखियों में जो छन्द अपनाया गया है, वह अपभ्रंश का दूहा छन्द है। अपभ्रंश भाषा का केन्द्र राजस्थान, गुजरात तथा सिन्ध रहा है। अपभ्रंश का प्रचार-प्रसार लगभग सम्पूर्ण हिन्दी प्रदेश में हुआ।

उत्तरवर्ती अपभ्रंश में पूर्वी क्षेत्र के कवियों ने रचनाएँ की हैं। **सरहपा** और **कण्हपा** के 'दोहा कोश' की भाषा अवहट्ठ है। यह भाषा राजस्थान से आभीरों के साथ पूर्वी भारत में काव्य भाषा के रूप में पहुँची थी। **विद्यापति** ने भी अपनी दो रचनाओं 'कीर्तिलता' और 'कीर्ति पताका' में इसी भाषा को माध्यम बनाया था। सरहपा से लेकर विद्यापति तक भाषा के दोहरे रूपों का प्रयोग परिलक्षित होता है। इन कवियों ने गीतों की रचना पूर्वी भाषा में की है और दोहों तथा प्रबन्ध काव्यों की रचनाएँ पारंपरित काव्यभाषा अवहट्ठ में की हैं। कबीर का भाषिक आदर्श इसी परम्परा के अनुरूप है। इसीलिए उनकी भाषा में राजस्थानी तत्त्वों की अपलब्धता आश्चर्यजनक नहीं है।

बीजक कबीर का सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थ

बीजक के अतिरिक्त कबीर के नाम से प्रचलित अन्य वाणियाँ कबीर के द्वारा ही कही गयी हैं, क्योंकि उनमें प्रक्षेपों की भरमार है। परन्तु यह भी नहीं कहा जा सकता कि 120 वर्ष के लम्बे जीवन में उन्होंने बीजक के अतिरिक्त और कुछ कहा ही नहीं है। बीजक के अतिरिक्त भी उनकी बहुत सारी वाणियाँ हैं, परन्तु उनकी समस्त वाणियों में बीजक सर्वाधिक प्रामाणिक है। प्रसिद्ध वैष्णव सन्त नाभादास ने कबीर की प्रशंसा करते हुए जो छप्पय कहा है, उसकी एक पंक्ति है– 'हिन्दू तुरुक प्रमान रमैनी शब्दी साखी।'

रमैनी, शब्द और साखी का यह क्रम किसी और 'कबीर वाणी' में नहीं, अपितु 'बीजक' में ही है। बीजक ही ऐसा ग्रन्थ है, जिसमें कबीर का क्रान्तिकारी स्वरूप पूर्ण रूप उभरा है।

बीजक पदों का गूढ़त्व और सूत्रत्व

बीजक में कबीर ने अपने नामवाची कबीर, कबिरा, कबीरा, कबिरन, कबीरन आदि अनेक शब्दों का प्रयोग किया है। ऐसा उन्होंने क्यों किया, स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। कुछ टीकाकारों के ख्याल से ये शब्द एकार्थबोधक हैं और कबीर ने इन सबका प्रयोग अपने लिए ही किया है, केवल छन्द प्रवाह बनाये रखने के लिए मात्राओं में हेर-फेर है। कुछ अन्य टीकाकारों के ख्याल से उपरोक्त सभी शब्द भिन्न-भिन्न अर्थ बोधक हैं। परन्तु दोनों दृष्टि एकांगी हैं। उपर्युक्त सभी शब्द हर जगह कबीर के नाम एवं व्यक्तित्त्व से भिन्न

अर्थ रखते हैं, ऐसी बात नहीं है, परन्तु हर जगह इन सबका एक ही अर्थ किया जाए तो पूरे अर्थ की संगति ही नहीं बैठ सकती।

बीजक हमें बरबस ही सूत्र ग्रन्थों की याद दिलाता है, जिसमें छोटा-सा वाक्य बहुत बड़े अर्थगांभीर्य एवं भाव को छिपाये रहता है। बीजक में रूपक, प्रतीक, अन्योक्तिकथन, उलटवांसी शैली, कहीं पूर्वपक्ष की मान्यताओं का प्रदर्शन कराने के लिए कहे गये वचन आदि होने से हर सिद्धान्त के मानने को अपने दार्शनिक सिद्धान्त की स्थापना के लिए जगह मिल जाती है।

बीजक की अनेक टीकाएँ

देशी-विदेशी अनेक विद्वानों द्वारा बीजक को प्रामाणिक कबीर साहित्य मानकर उसकी अब तक दर्जनों टीकाएँ हो चुकी हैं तथा आज भी होती जा रही हैं। बीजक की अब तक हुई अनेक टीकाएँ ऐसी हैं, जिनकी भाषा-शैली पुरानी होने से वह आज सबकी समझ में ठीक से नहीं आती। कुछ में तो अर्थ अत्यन्त अस्पष्ट एवं भ्रामक हो गया है। कुछ टीकाएँ तो ऐसी हुई हैं, जिनमें सारे पाखण्ड एवं कुरीतियों को जलाकर राख कर देने वाला कबीर का क्रान्तिकारी विदग्धात्मक रूप ही ओझल हो गया है और वहाँ पर कबीर को परम्परापोषित भक्तकवि बनाकर रख दिया गया है तथा उन्हें किसी अदृश्य, अज्ञात शक्ति के आगे गिड़गिड़ाने वाला भावुक भक्त बना डाला गया है।

11

साखी

साखी संस्कृत 'साक्षी' का अपभ्रंश रूपान्तर है, जिसे सिद्धों ने 'उपदेश' कहा है, उसे ही सन्तों ने साखी कहा है। साखियों में उनके 'अनुभूत सत्य की अभिव्यक्ति' हुई है। सन्त कवि इस प्रकार के विषयों को, विशेषकर अपनी साखियों तथा 'शब्दों', अर्थात् पदों के माध्यम द्वारा प्रकट प्रतिपादित करते हैं। 'साखी' शब्द संस्कृत के 'साक्षी' शब्द का रूपान्तर है, जिसका अर्थ किसी बात को अपनी आँखों देख चुकने वाला और इसी कारण उसके सम्बन्ध में किसी प्रश्न के उठने पर, प्रमाणस्वरूप भी समझा जाने वाला व्यक्ति हुआ करता है तथा कदाचित् इसीलिए कबीर 'बीजक' में इस काव्य प्रकार का परिचय 'ज्ञान की आँखी' कहकर भी दिया गया है। इन साखियों में प्रधानतः ऐसे विषय ही आते दीख पड़ते हैं, जिन्हें सन्तों ने अपने दैनिक जीवन में भली-भाँति समझकर प्रमाणित कर लिया है अथवा जिन्हें वे अपनी निज की कसौटी पर पहले से कस चुकने के कारण साधिकार व्यक्त करने की क्षमता रखते हैं।

परशुराम चतुर्वेदी का कथन है 'इसका अभिप्राय उस पुरुष से है, जिसने किसी वस्तु अथवा घटना को अपनी आँखों से देखा हो। इस कारण 'साखी' शब्द का तात्पर्य प्रायः उस पुरुष से हुआ करता है, जो उन वस्तुओं व घटनाओं के विषय में विवाद खड़ा होने पर निर्णय करते समय प्रमाण स्वरूप समझा जा सके। इस प्रकार 'साखी' शब्द फिर प्रसंगवश महापुरुषों के लिए प्रयुक्त होते-होते, पीछे उनके आप्तवचन का पर्याय बन गया होगा।

साखियों में प्राय: छन्द का प्रयोग किया गया है। दोहा के अलावा सोरठा, उपमान, मुक्तामणि, अवतार, दोहकीय और गीता छन्दों का भी प्रयोग है।

परशुराम चतुर्वेदी ने इसमें दोहा, चौपाई, श्याम, उल्लास, हरिपद, गीता, सार तथा छप्पै छन्दों का अन्वेषण किया है। साखी का विभाजन 'अंगों' में किया है। साखियों के कुल 53 अंग हैं। अंग विभाजन में एकरूपता तथा वैज्ञानिकता का अभाव दिखाई देता है। कबीर ने 'अंग' शब्द का प्रयोग लक्षण के अर्थ में किया है।

कबीर ग्रन्थावली में 'अंग' शब्द विषय वस्तु का द्योतक है और साधना की यात्रा की क्रमिकता की हल्की झलक भी उसमें दिखाई देती है।

छंदों में प्रयोग

साखी रचनाएँ प्राय: 'दोहा' नामक छन्दों में पायी जाती है और कभी-कभी इन्हें 'सोरठा' में भी व्यक्त किया गया है। इसके अतिरिक्त सन्तों की साखियों के अन्तर्गत बीच-बीच में सार, हरिपद, चौपाई, चौपई, दोही, सरसी, गीता, मुक्तामणि, श्याम उल्लास या छप्पय जैसे छन्द भी आ जाया करते हैं, जिनका 'दोहा' के साथ अधिक सम्बन्ध नहीं है। इन साखियों का एक पर्याय 'सलोक' भी समझा जाता है, जिसके उदाहरण सिखों के 'आदिग्रंथ' में मिलते हैं। परन्तु साखियों को जहाँ 'अंग' जैसे शीर्षकों के नीचे विभिन्न वर्गों में विभाजित किया गया देखा जाता है, वहाँ 'सलोकों' के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता। सन्तों की भाँति सूफी कवियों ने भी इस प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है, किन्तु उनके यहाँ इसे फुटकर रूपों में प्राय: 'दोहरा' नाम दिया गया मिलता है, जो प्रत्यक्षत: 'दोहा' शब्द का ही रूपान्तर हैं। दोहा एवं चौपाई छन्दों का एक साथ प्रयोग सूफी कवियों ने अपनी प्रेमगाथाओं में किया है, जिसका एक रूप कतिपय सन्तों की 'रमैनियों' में भी दीख पड़ता है। इन छन्दों के प्रयोग वाला एक दूसरा काव्य-प्रकार 'ग्रन्थ-बावनी' नाम से मिलता है, जिसकी द्विपदियों का आरम्भ क्रमश: नागरी लिपि के बावन अक्षरों से होता है और जिसकी पद्धति पर निर्मित 'अखरावती', 'ककहरा' आदि तथा फारसी लिपि के अक्षरानुसार लिखे जाने वाले 'अलिफनामा', 'सोहर्फी' आदि पाये जाते हैं।

12

सबद

'सबद' 'शब्द' का रूपान्तर है। सबद या शब्द का प्रयोग हिंदी के संत-साहित्य में बहुलता से हुआ है। डॉ. पीतांबर बड़थ्वाल ने गरीबदास के आधार पर लिखा है कि- शब्द, गुरु की शिक्षा, सिचण, पतोला, कूची, बाण, मस्क, निर्भयवाणी, अनहद वाणी, शब्दब्रह्म और परमात्मा के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

अर्थ

वेद 'शब्दपरक' है और वेद का अर्थ हुआ ज्ञान। अतः शब्द का भी अर्थ हुआ ज्ञान। वैदिक शब्द अपौरुषेय माने गये हैं और सन्त तथा नाथ-सम्प्रदाय में गुरु की प्रतिष्ठा ब्रह्म के समान ही है, अतः गुरु की वाणी का नामकरण शब्द, सबद, सबदी है। वैदिक वाणी ही सर्वकर्मों की अधिष्ठातृ और सर्वतोभावेन पालनीय है, उसी प्रकार गुरु-वाणी सर्वज्ञान-सम्पन्न, सर्वकर्माधिष्ठात्री और अतर्क्य भाव से ग्राह्य है। इस परम्परा के कारण कबीर की वाणी को ही वेद-वाणी के रूप में स्वीकृत किया गया है, क्योंकि 'वाणी हमारी पूरब'- की टीका करते हुए टीकाकारों ने लिखा है कि 'पूर्व' का अर्थ आदि, अतः पूर्व की वाणी का अर्थ हुआ आदिकालीन वाणी, अर्थात् वेद। 'गोरखबानी' में सबदी का प्रयोग उपदेश के अर्थ में हुआ है- सबद एक पूछिबा कहो गुरुदयालं, बिरिधि थै क्यूँ करि होइबा बालं। सामान्य रूप से पद रचनाएँ राग-रागनियों में बँधी होती हैं। शब्दों के लिए यह विधान नहीं है। उपदेशात्मक और सिद्धान्त निरूपक गेय पदों को सबदी कहते हैं। 'गोरखबानी' की प्रथम सबदी है-

बसती न सुन्यं सुन्यं न बसती अगम अगोचर ऐसा।

गगन सिखर महि बालक बोले ताका नाँव धरहुगे कैसा।

अनहद नाद की चर्चा करने वाली गीतियों के अर्थ में भी सबद का प्रयोग है, क्योंकि 'गोरखबानी' के अनुसार 'सबद अनाहत' ही सबदी है।

'शब्दस्तोत्रमाला' के अनुसार–

सबद अखण्डित रूप, सबदु नहिं पण्डित होई। जैसा सबद अगाध, सकल घट रह्यो समोई।

सबदु करै आचार सबद रोये अरु गावै। निर्गुन सर्गुन बनरि सबद सबही मैं पावै'।

स्वरूप

सन्तों की 'सबद' (शब्द) अथवा पद नामक रचनाएँ अधिकतर गेय हुआ करती हैं और इनमें उनके आत्मनिवेदन जैसे व्यक्तिगत उद्‌गारों की ही प्रधानता रहती है। आकार की दृष्टि से ये पद छोटे या बड़े, सभी प्रकार के हो सकते हैं, किन्तु इनकी कोई-न-कोई पंक्ति ऐसी भी होती है, जो 'टेक' या 'रहाउ' के रूप में दोहराई जाती है। इन पदों को ही सन्तों की 'बानी' कहने की भी प्रथा है, यद्यपि इस शब्द का प्रयोग उनकी सभी प्रकार की रचनाओं के लिए भी किया गया मिलता है। पदों एवं साखियों की रचना केवल फुटकर पद्यों के रूप में की गयी दीख पड़ती है, किन्तु रमैनियों के विषय में हम ऐसा नहीं कह सकते। इनकी दोहा-चौपाइयाँ एक साथ क्रमिक रूप में आकर किसी विषय के विवरणात्मक वर्णन के लिए अधिक उपयुक्त ठहरती है। 'सबद' या 'शब्द' प्राय: गेय होते हैं। अत: राग रागिनियों में बँधे पर 'सबद' या शब्द कहते जाते रहे हैं। सिद्धों से लेकर निर्गुणी, सगुणी सभी संप्रदाय के संत अथवा भक्तों ने विविध राग रागिनियों में पदरचना की है। परंतु प्रत्येक गेय पद सबद नहीं कहा जाता। संतों की अनुभूति 'सबद' कहलाती है। कबीर की रचनाओं में 'सबद' का बहुत प्रयोग हुआ है और भिन्न-भिन्न अर्थों में हुआ है। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने 'हिंदी साहित्य का आदिकाल' शीर्षक ग्रंथ में लिखा है –

संवत् 1715 की लिखी हुई एक प्रति से संग्रहित और गोरखबानी में उद्धृत पदों को 'सबदी' कहा गया है। कबीर ने संभवत: वहीं से 'सबद' ग्रहण किया होगा।'

13

रमैनी

कबीर बीजक में 'रमैनी' की व्युत्पत्ति 'रामणी' से मानी गयी है। इसका विषय, 'जीवात्माओं की संसरणादि क्रीड़ाओं का सविस्तार वर्णन है।' परशुराम चतुर्वेदी का कहना है कि 'रामायण' शब्द का क्रमशः रमैन बन जाना तथा उसे अल्पत्व बोध कराने के लिए 'रमैनी' रूप दिया जाना, उतना अस्वाभाविक नहीं है। रमैनी का अर्थ संसार में जीवों का रमण या वेदशास्त्र के विचारों में रमण भी अनुमानित किया गया है। इसका अर्थ यदि राम के चिन्तन मनन या राम के वृत्त में रमण करना लगाया जाए तो अधिक समीचीन है। वेदशास्त्र की बात सन्तों के सन्दर्भ में ग्रहणीय नहीं है। 'कबीर बीजक' में एक पंक्ति में 'रमैनी' शब्द आया है– अदबुद रूप जात कै बानी, उपजी प्रीति रमैनी ठानी।

यहाँ रमैनी का प्रयोग स्तुति वर्णन या रामधुन माना जा सकता है। 'रमैनी' के कुछ ऐसे प्रयोग उपलब्ध होते हैं, जिससे यह अनुमान किया गया है कि रमैनियों की रचना लोकोपचार की दृष्टि से भी की जाती थी। रमैनियों की रचना दोहा, चौपाइयों में की गयी है। इनकी शैली प्रायः वर्णनात्मक है। इसका सम्बन्ध अपभ्रंश में प्रचलित 'पद्धडियाबद्ध' कडवक परम्परा से जोड़ा गया है।

प्रकार

रमैनी निम्न प्रकार की पायी जाती हैं–

1. बावनी (रमैनी),
2. चौंतीसा,
3. थिंती,
4. वार,
5. बसन्त,
6. हिंडोला,
7. चाँचर,
8. कहरा,
9. बेलि,
10. विरहुल, और
11. विप्रमतीसी।

कबीर के द्वारा प्रयुक्त काव्यरूपों को देखने से ज्ञात होता है कि उनकी दृष्टि लोक परम्परा की ओर थी। उन्होंने आदिकाल में प्रचलित काव्यरूपों की लोकोन्मुखी परम्परा को आत्मसात करके अपनी अनुभूति और विचारों को सामान्य जनों में प्रचलित गीत माध्यमों से सम्प्रेषित किया है। विभिन्न लोक-काव्यरूपों का सफल और मौलिक प्रयोग, कबीर को कवि ही नहीं, बल्कि लोक कवि सिद्ध करता है।

❒❒❒